

सप्टेंबर २०१३

वर्ष : १२

सन्मति-तीर्थ वार्षिक पत्रिका

सूत्रकृतांग - श्रुतस्कन्ध - २
मूलभूत चिन्तन विशेषांक

सन्मति-तीर्थ
जैनविद्या अध्यापन एवं संशोधन संस्था

सन्मति-तीर्थ प्रकाशन
फिरोदिया होस्टेल
८४४, शिवाजीनगर, बी.एम्.सी.सी. रोड, पुणे ४११ ००४
फोन नं : २५६७१०८८

सन्मति-तीर्थ

जैनविद्या अध्यापन एवं संशोधन संस्था

रजिस्ट्रेशन क्र. महाराष्ट्र - /३१८६/८७. पुणे, दि. १३ अप्रैल १९८६
फिरोदिया होस्टेल, ८४४, शिवाजीनगर, बी.एम्.सी.सी. रोड, पुणे ४११ ००४
फोन नं : २५६७१०८८

सन्मति-तीर्थ वार्षिक पत्रिका २०१३ वर्ष : १२

मानद सचिव : सौ. रंजना लोढा

कार्यालय एवं वित्तलेखा विभाग : सौ. लीना बिनायकिया

संस्था निदेशक एवं मुख्य सम्पादक : डॉ. नलिनी जोशी

सहसम्पादक : डॉ. कौमुदी बलदोटा

डॉ. अनीता बोथरा

प्रकाशक : सन्मति-तीर्थ, पुणे ४

सर्वाधिकार : सुरक्षित

आवृत्ति : प्रतियाँ ३००

प्रकाशन : सप्टेंबर २०१३

मूल्य : रु. १००/-

अक्षर संयोजन : श्री. अजय जोशी

मुद्रक : कल्याणी कार्पोरेशन,

१४६४, सदाशिव पेठ,

पुणे - ४११०३०.

फोन - २४४८६०८०

सन्मति-तीर्थ के संस्थापक



स्व. नवलमलजी (बावाजी) फिरोदिया

जन्मदिनांक : ९-९-१९१०

स्वर्गवास : २६-३-१९९७

सम्पादकीय

सन्मति-तीर्थ वार्षिक पत्रिका का लगातार बारहवाँ अंक प्रकाशित करते हुए हम खुद को भाग्यशाली समझते हैं। विशेषतः आगमों की पढाई की शृंखला में हर साल अग्रेसर होकर, एक-एक आगम पर विद्यार्थियों ने किये हुए मुक्त चिन्तन प्रस्तुत करने का मौका हमें मिल रहा है। पूरे भारतवर्ष में अनेकों जैन संस्था ऐसी हैं जो सर्टिफिकेट, डिप्लोमा, पदवी या पदव्युत्तर अभ्यासक्रमों का जैनविद्या के सन्दर्भ में आयोजन करते हैं। कुछ गिनेचुने विद्यार्थी पीएच्.डी. की डिग्री भी हासिल करते हैं। लेकिन सन्मति-तीर्थ का सौभाग्य यह है कि जैनविद्या के अध्ययन की धुन सवार होकर सैंकडो विद्यार्थी बारह-पन्द्रह साल तक निरन्तर पढाई करना चाहते हैं।

छोटे बच्चों के लिए, युवक-युवतियों के लिए और प्रौढ़ों के लिए पाँच-पाँच साल के श्रेणिबद्ध पाठ्यक्रम पिछले २६ साल से चल रहे हैं। संस्था ने लगभग इक्कीस कार्यक्षम शिक्षिकाओं का एक पूरा दल इसके लिए तैयार किया है।

प्रस्तुत पत्रिका में सूत्रकृतांग (२) पर आधारित विभिन्न लघुनिबन्ध पढकर वाचक आश्चर्यचकित हो जायेंगे। 'सूत्रकृतांग' ग्रन्थ के व्याख्यानोपर आधारित पहले पाँच लेख डॉ. अनीता बोथरा ने शब्दांकित किये हैं। साथ ही साथ प्रतियोगिता की जानकारी भी बहुत-ही रोचक है। इसके अलावा तीन-चार विविध विषयों पर आधारित लेख यहाँ प्रस्तुत किये हैं। मराठी भाषा को 'अभिजात भाषा' का दर्जा प्राप्त कराने में जैनियों ने जो योगदान दिया है वह वाचक अवश्य पढ़ें।

श्रीमान् अभय फिरोदियाजी के प्रोत्साहन के कारण ही सन्मति-तीर्थ वार्षिक पत्रिका नियमित रूप से निकल रही है। हम उनके ऋणी हैं।

डॉ. नलिनी जोशी
(मानद निदेशक)
सप्टेंबर २०१३

सन्मति-तीर्थ वार्षिक-पत्रिका २०१३

अनुक्रमणिका

क्र. शीर्षक	लेखक	पृष्ठ क्र.
१) सूत्रकृतांग (२) के विविध आयाम		
१) प्रास्ताविक		
२) निबन्धसूचि		
३) गुन्हेगारी जगत् आणि क्रियास्थान		
४) सूत्रकृतांगात निर्दिष्ट 'पापश्रुत' (अर्थात् मंत्र, तंत्र, अद्भुतविद्या)		
५) आजची जैन जीवनपद्धती व वनस्पतिसृष्टी		
६) सूत्रकृतांगातील वनस्पतिसृष्टी व सद्यस्थिती		
७) सूत्रकृतांगातील प्रत्याख्यानाचे स्वरूप		
८) 'लेप' गृहपति : एक आदर्श श्रावक	संगीता बोथरा	
९) सूत्रकृतांग में प्रतिबिम्बित सामाजिक अंश	कुमुदिनी भंडारी	
१०) आचारश्रुत अध्ययन-एक चिन्तन	सुमतिलाल भंडारी	
११) सूत्रकृतांगाचे दोन श्रुतस्कंध : तौलनिक विचार	रेखा छाजेड	
१२) सूत्रकृतांगाच्या द्वितीय श्रुतस्कंधाचे सार	शकुंतला चोरडिया	
१३) हस्तितापसांना यथोचित उत्तर	साधना देसडला	
१४) सद्यःकालीन परिप्रेक्ष्य में सूत्रकृतांग	मंगला गोठी	
१५) अद्गस्स कहाणयं	आशा कांकरिया	
१६) हस्तितापस के मत का सम्भाव्य खण्डन	संगीता मुनोत	
१७) अप्रत्याख्यान आणि प्रत्याख्यान : एक चिंतन	कल्पना मुथा	
१८) सूत्रकृतांग (२) : काही विशेष व्यक्तिरेखा	ज्योत्स्ना मुथा	
१९) सूत्रकृतांग (२) : एक संपूर्ण आगम	हंसा नहार	
२०) सूत्रकृतांग (२) : एक चिंतनसप्तक	अर्जुन निर्वाण	
२१) पद्यमय 'आर्द्रकीय' अध्ययन	चंदा समदडिया	
२२) मला भावलले आचारश्रुत	लीना संचेती	
२) निबंधस्पर्धा-वृत्तांत आणि स्पर्धकांचे अभिनंदन		
३) मराठी भाषेचे अभिजातत्व	डॉ. नलिनी जोशी	
४) जैनधर्म आणि अहिंसा	डॉ. नलिनी जोशी	
५) जैनांचे पर्युषण महापर्व : एक सकारात्मक बाजू	सुमतिलाल भंडारी	
६) देशासाठी मी काय करू शकतो ?		
७) सन्मति-तीर्थ के परीक्षा परिणाम २०१३		
८) शिक्षक एवं अध्यापन केन्द्र		

सूत्रकृतांग श्रुतस्कन्ध (२) के विविध आयाम

(१) प्रास्ताविक

साम्प्रत काल में किसी भी ज्ञानशाखा की पदवी या पदव्युत्तर पदवी प्राप्त करने का तरीका बदल गया है। हर एक विद्यार्थी को सालभर किये हुए अध्ययन पर आधारित 'प्रेझेंटेशन' देना पडता है। हमने सोचा कि, जब हम आगमों का अध्ययन पूरे शैक्षणिक स्तर पर कर रहे हैं तब हर एक विद्यार्थी को चाहिए, कि वह लगभग दस मिनटों का एक प्रेझेंटेशन सबके सामने करें। सन्मति-तीर्थ संस्था में आकर, सूत्रकृतांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों ने १३ एप्रिल २०१३ को अपने लघुनिबन्ध पढे।

कुल ६७ निबन्ध सुबह १० से लेकर शाम ५ तक प्रस्तुत किये गये। सबसे लोकप्रिय विषय 'प्रत्याख्यानक्रिया' था। विशेषतः 'आया अपचचक्खाणी' इस सूत्र के स्पष्टीकरणात्मक निबन्ध लगभग सात-आठ लोगों ने लिखे। किसी ने दूसरे श्रुतस्कन्धों के सातों अध्ययनों पर आधारित सारांशलेखन प्रस्तुत किया। आचारश्रुत अध्ययन में हिित वाणीविवेक कई विद्यार्थियों को उद्बोधक प्रतीत हुआ। सन्मति की एक प्राकृत पढानेवाली शिक्षिका ने आर्किकुमार की कथा प्राकृत भाषा में लिखने का प्रयास किया। आर्द्रकीय अध्ययन का मराठी पद्यानुवाद भी आपको अच्छा लगेगा। तीन-चार विद्यार्थियों ने 'लेप' नामक आदर्श श्रावक पर विचार प्रस्तुत किये। हस्तितापस के मत में जो त्रुटियाँ थी वो दो-तीन लोगों ने दूर करने का प्रयास किया।

एक ग्रन्थ की ओर देखने के कितने सारे दृष्टिकोण हो सकते हैं यह तथ्य निम्नलिखित सूचि से उजागर होगा

-

(२) सूत्रकृतांगपर -२- पर आधारित लघुनिबन्धों की विषयसूचि

१) प्रत्याख्यानक्रिया व 'नालंदीय' मधील प्रत्याख्यान	बागमार चंद्रकला
२) मित्रदोषप्रत्ययिक क्रियास्थान	बागमार लता
३) मित्रदोषप्रत्ययिक क्रियास्थान (सद्यःकालीन दृष्टिकोणातून)	बागमार प्रकाश
४) आया अपचचक्खाणी - विशेष स्पष्टीकरण	बागमार स्मिता
५) 'आचारश्रुत' अध्ययन का मुख्य आशय	बेदमुथा श्यामल
६) मित्रदोषप्रत्ययिक क्रियास्थान	बोथरा कमल
७) 'लेप' गृहपति : एक आदर्श श्रावक	बोथरा संगीता
८) प्रत्याख्यान का, कशाचे व कोण करू शकतो ?	बोरा पुष्पा
९) आया अपचचक्खाणी : भावार्थ	भंडारी अनिल
१०) सूत्रकृतांग में प्रतिबिम्बित सामाजिक अंश	भंडारी कुमुदिनी
११) 'लेप' नामक गृहपति : एक आदर्श श्रावक	भंडारी सरला
१२) आचारश्रुत अध्ययन : एक चिंतन	भंडारी सुमतिलाल
१३) हिंसादण्डप्रत्ययिक क्रियास्थान	भंडारी सुनीता
१४) आचारश्रुत अध्ययनाचा मुख्य विषय	भन्साळी संतोष
१५) सूत्रकृतांग (२) में प्रतिबिम्बित सामाजिक अंश	भन्साळी सुविता
१६) 'आचारश्रुत' अध्ययनाचा सारांश	भटेवरा विमल
१७) मित्रदोषप्रत्ययिक क्रियास्थान	भटेवरा कमला
१८) 'आया अपचचक्खाणी' सूत्र का भावार्थ	भटेवरा पुष्पा
१९) अध्यात्मप्रत्ययिक क्रियास्थान	भटेवरा उज्ज्वला

२०) गोशालक के आक्षेप-आर्द्रक के जवाब	भटेवरा विमल
२१) गोशालक के आक्षेप-आर्द्रक के जवाब	भुरट शशिकला
२२) आर्द्रक-गोशालक : सवाल-जवाब	छाजेड भगवानदास
२३) आहारपरिज्ञा और पिण्डैषणा	छाजेड रेखा
२४) सापेक्षतावाद : सूत्रकृतांग की दृष्टि से	चोपडा मंजु
२५) 'पुण्डरीक' अध्ययन में खण्डन-मण्डन	चोरडिया मधुबाला
२६) सूत्रकृतांगाच्या द्वितीय श्रुतस्कंधाचे सार	चोरडिया शकुंतला
२७) आर्द्रक-गोशालक : आक्षेप व समाधान	डागलिया लता
२८) हस्तितापसांना यथोचित उत्तर	देसडला साधना
२९) मित्रदोषप्रत्ययिक क्रियास्थान	धोका अनीता
३०) 'आचारश्रुत' अध्ययनाचा विषय	गुंदेचा शोभा
३१) सद्यःकालीन परिप्रेक्ष्य में सूत्रकृतांग	गोठी मंगला
३२) 'प्रत्याख्यानक्रिया' अध्ययन का महत्त्व	कर्नावट कमल
३३) प्रत्याख्यान का महत्त्व	कर्नावट सविता
३४) सूत्रकृतांग (२) मध्ये प्रतिबिंबित सामाजिक अंश	कटारिया संगीता
३५) अद्दगस्स कहाणयं	कांकरिया आशा
३६) 'आया अपच्चकखाणी' सूत्र का भावार्थ	कांकरिया निर्मला
३७) प्रत्याख्यान क्यों करना चाहिए ?	केमकर शकुंतला
३८) सूत्रकृतांग और मुण्डकोपनिषद : एक तुलना	कुलकर्णी मनीषा
३९) अनेकान्तवाद : आक्षेप, मर्यादा व समाधान	कोठारी चंचला
४०) प्रत्याख्यानक्रिया आणि 'नालंदीय' मधील प्रत्याख्यान	खणसे पारमिता
४१) सूत्रकृतांग (२) के अध्ययनों का विषयानुसारी महत्त्व	खिंवसरा अरुणा
४२) 'आया अपच्चकखाणी' सूत्र का भावार्थ	खिंवसरा मीनल
४३) आदर्श श्रावक	ललवाणी प्रतिभा
४४) सूत्रकृतांग (२) : एक अनुचिंतन	लुंकड कमला
४५) प्रत्याख्यानक्रिया	लोढा मदन
४६) सूत्रकृतांग (२) अध्ययनांचे विषयानुसारी महत्त्व	लोढा शोभा
४७) गाथापति-चोर-विमोक्षण न्याय	मालु बालचंद
४८) आर्द्रक और शाक्यभिक्षु का वार्तालाप	मुनोत सविता
४९) हस्तितापस के मत का संभाव्य खण्डन	मुनोत संगीता
५०) सूत्रकृतांग (२) के अध्ययनों का विषयानुसारी महत्त्व	मुथा अनीता
५१) अप्रत्याख्यान आणि प्रत्याख्यान : एक चिंतन	मुथा कल्पना
५२) सूत्रकृतांग (२) : काही विशेष व्यक्तितरेखा	मुथा ज्योत्स्ना
५३) आर्द्रक-गोशालक के आक्षेप और समाधान (सवाल-जवाब के रूप में)	नहाटा संगीता
५४) सूत्रकृतांग : एक संपूर्ण आगम	नहार संगीता
५५) सूत्रकृतांग (२) : एक चिंतनसप्तक	निर्वाण अर्जुन
५६) आर्द्रकाचे गोशालकाला उत्तर	ओसवाल ललिता

- ५७) वनस्पतिविचार : जैन दर्शनाच्या संदर्भात
 ५८) प्रत्याख्यानक्रिया
 ५९) 'आचारश्रुत' अध्ययन का महत्त्व
 ६०) प्रत्याख्यान : एक आवश्यक
 ६१) 'पुण्डरीक' अध्ययनात स्वमताचे मंडन
 ६२) 'आचारश्रुत' का मुख्य आशय
 ६३) 'आचारश्रुत' अध्ययन का महत्त्व
 ६४) पद्यमय 'आर्द्रकीय' अध्ययन
 ६५) मला भावलेले आचारश्रुत
 ६६) आया अपच्चक्खाणी : भावार्थ
 ६७) आर्द्रक-गोशालक संवाद

- पारख सुरेखा
 पोकरणा लीलावती
 शहा जयबाला
 शिंगवी पुष्पा
 शिंगवी रंजना
 शेटिया राजश्री
 श्रीश्रीमाळ ब्रिजबाला
 समदडिया चंदा
 संचेती लीना
 सुराणा सीमा
 सोलंकी वैभवी

(३) गुन्हेगारी जगत् आणि क्रियास्थान

व्याख्यान : डॉ. सौ. नलिनी जोशी

शब्दांकन : डॉ. सौ. अनीता बोथरा

दूरदर्शनवर 'क्राइम पेट्रोल', 'सावधान इंडिया', 'लक्ष्य' इ. कार्यक्रम बघताना मन अगदी खिन्न होतं, बेचैन होतं, दुःखी होतं आणि खोल मनात एक विचार तरंगतो की, 'खरंचच ! हा अवसर्पिणी कालचक्राचा 'दुखमा आण' आहे'. किडनेपिंग, रेप, खून, चाइल्ड अॅब्जुजमेंट, बाबा भोंदूगिरी, ह्युमन ट्रफिक, सायबर-कॅफे-क्राइम, खंडणी इ. अनेक गुन्हांच्या दर्शनानं मन हादरून जाते. विचार येतो - अरेरे ! अनेक प्रकारच्या दुःखांनी हे जग गच्च भरलं आहे. लहान बालकापासून ते वृद्ध व्यक्तीपर्यंत प्रत्येकजण कोणत्या ना कोणत्या प्रकाराने शोषित होत आहे, पीडित होत आहे आणि चिंतन सुरू होते की - आपण भ. महावीरांच्या समयीच जन्माला आलो असतो तर किती बरे झाले असते ! अशा प्रकारचे क्राइम ना पहावयास मिळाले असते, ना लोक त्या क्राइमचे बळी झाले असते. 'सत्यं, शिवं, सुंदरं' अशा जगाचा आपणही आस्वाद घेतला असता.

पण वास्तविकता अशी नाही -

सूत्रकृतांगातील (सूत्रकृतांग श्रुतस्कंध २, अध्ययन २) १३ क्रियास्थानांचे वर्णन वाचताना, 'वर्तमानात चालू असलेली गुन्हेगारीची झळ कमी आहे की काय ?' असे वाटू लागते. उत्तराध्ययनसूत्र (३१.१२), आवश्यकसूत्र (तेहतीस बोल), तत्त्वार्थसूत्र (६.६) इ. ग्रंथातही अशा प्रकारच्या क्रियास्थानांचे वर्णन आहे. त्या सर्वांचे मूळ सूत्रकृतांग आगमात सापडते.

याचाच अर्थ असा की भ. महावीरांच्या वेळी सुद्धा सुष्ट-दुष्ट, सज्जन-दुर्जन, चांगल्या-वाईट प्रवृत्ती होत्या. त्यांनी यथाशक्य लोकांना सदुपदेश देण्याचा प्रयत्न केला. हिंसेच्या जगात भ. महावीरांनी प्रकाशाचा झोत टाकून, समाजापासून ते वैयक्तिक मनातल्या द्वंद्वपर्यंत दर्शन करविले. आपण आपल्या कल्पनाशक्तीनेही जितक्या हिंसक विषयांना स्पर्श करू शकलो नसतो त्याहून अधिक-सामाजिक, राजकीय, कौटुंबिक, आर्थिक, धार्मिक, वैयक्तिक अशा अनेक प्रकारच्या गुन्हांचे, त्या काळी भ. महावीरांनी आपल्या उपदेशाच्या माध्यमातून, क्रियास्थानांच्या रूपाने, प्रत्यक्ष स्वरूपच आपल्यासमोर वर्णिले.

हिंसेमागील प्रेरणा, त्यासाठी केली गेलेली प्रवृत्ती व त्याचे होत असलेले परिणाम अशा तीन मुद्यांना स्पर्श करणारा उपदेश त्यांनी दिला. अभ्यासातून असे लक्षात आले की त्यावेळचे गुन्हे आणि आत्ता होत असलेले गुन्हे, यात काही मोठा फरक नाही. वैयक्तिक दृष्ट्या माणूस निराशेत जाऊन कशी आत्महत्या करतो इथपासून ते थेट

समाजात राहून नाती-परिवारासाठी इतरांचीही कशी पिळवणूक करतो येथपर्यंत-अशा सर्व प्रकारच्या विचारांनी भरलेली ही क्रियास्थाने आहेत. दूरदर्शनवर सुद्धा जितकी विषयांची विविधता नसेल तितकी विविधता भ. महावीरांनी क्रियास्थानांच्या द्वारे निदर्शनास आणून दिली आहे. स्वतःच अधिक सुखात असावे, मी सर्वांवर सत्ता चालवावी, माझ्या कामवासनेची पूर्ती व्हावी, खूप पैसे मिळवावेत ही त्या सर्व क्रियास्थानांमागची प्रेरणा आहे व त्यासाठी अवलंबिलेले खालील वेगवेगळे हिंसक मार्ग आहेत.

* पारिवारिक कुशलतेसाठी, नाती-गोती-परिवार-मित्रमंडळी यांच्या भल्यासाठी, भरभराटीसाठी, देवीदेवतांसाठी - अनेक प्रकारच्या जीवांची हिंसा म्हणजे 'अर्थदंड' व परिणामस्वरूप पापकर्मांचा बंध.

* स्वतःसाठी व दुसऱ्यासाठी, कोणतेही प्रयोजन नसताना विनाकारण - म्हणजे ना ही शरीरासाठी, ना ही उपजीविका म्हणून, ना ही पुत्र-पत्नी-पशु इ. च्या पोषणासाठी, ना घराच्या संरक्षणासाठी, ना प्राण्यांच्या रक्षणासाठी पण तरीही वनस्पतींचे छेदन-भेदन करणे, आग लावणे, प्राण्यांची चामडी काढणे, डोळे उखडणे, उपद्रव करणे इ. द्वारा जीवांना विना प्रयोजन शिक्षा देणे म्हणजे 'अनर्थदंड' व परिणामस्वरूप वैराचा बंध.

* आपण मारले जाऊ किंवा आपले संबंधी मारले जातील या भीतीने विषारी सर्प, व्याघ्र, सिंह, विंचू इ. प्राण्यांना तसेच क्रूर, हिंसक वृत्तीच्या माणसांनाही, त्यांची काहीही चूक नसताना 'तो हिंसक आहे', असे समजून व 'स्वतःला भीती वाटते' म्हणून त्यांना दंड देणे, मारणे म्हणजे 'हिंसादंड' व परिणामस्वरूप पापकर्मांचा बंध.

* आपल्या उपजीविकेसाठी जर कोणी शिकार करत असेल, व तो मृगाच्या शिकारीसाठी गेला असताना, जाता-जाता वाटेत दिसणारे कबूतर, चिमणी, माकड इ. प्राण्यांना विनाकारण मारणे किंवा जर शेती करत असेल तर शेती करताना इतर वनस्पतींचे अचानक छेदन-भेदन होणे म्हणजे 'अकस्मात्दंड' व परिणामस्वरूप पापकर्मांचा बंध.

या अकस्मात्दंडाचे वर्तमानस्वरूप असे आहे की एखाद्या गुन्हेगाराला गुन्हा करताना कोणी पाहिल्यास, तो साक्ष देऊ नये म्हणून त्याला मारणे किंवा एखाद्याला मारताना त्याच्या वाटेत जे-जे येतील त्यांना उडविणे.

* आई-वडील, भाऊ-बहीण, पत्नी-पुत्र-कन्या असे सर्वांनी मिळून एकत्र कुटुंबात राहणे व आपल्याच कुटुंबातील लोकांना शत्रू समजून मारणे.

अथवा गावात, नगरात, शहरात लूट, चोरी होत असताना जो लुटारू अथवा चोर नसतो त्याला तसे समजून मारणे म्हणजेच संशयित हाच गुन्हेगार किंवा एक संपूर्ण जातच गुन्हेगारीसाठी बदनाम (जशी पारधी जमात-चोर जमात म्हणून बदनाम) हा 'दृष्टिविपर्यास दंड' व परिणामस्वरूप पापकर्मांचा बंध

* स्वतःच्या सुखसुविधेसाठी व सर्व काही स्वतःला प्राप्त व्हावे या वृत्तीने - दुसऱ्याच्या जमिनी, घरे बळकावणे, सरकारच्या पैशावर डल्ला मारणे, जनतेच्या हितासाठी जमा केलेले पैसे स्वतः लुबाडणे, परवानगीशिवाय जास्तखाणी खोदणे, मोठमोठ्या शिक्षणसंस्था उभारून मोठमोठाले डोनेशन्स घेणे, मिनरल वॉटर बनविण्यासाठी पाणी पसणे अशा अनेक प्रकारे सर्वच देशात, वेगवेगळ्या स्तरावर कृत्रिम व नैसर्गिक दोन्ही प्रकारच्या चोऱ्या व खोटारडेपणा चालू असतो. अदत्तादान व मृषाप्रत्ययाची हे नव्याने सुरू झालेले सर्व प्रकार तेथे सहज जोडता येतील.

हुकूमशाही व राजेशाही सोडून सर्वांच्या हितासाठी लोकशाही आणली तरी पापाचरणाळा लगाम नाही. कर्जमाफी, शिक्षण, बचतगट इ. चांगल्या सोयीतही चोऱ्यामाऱ्या चालूच. आजच्या परिप्रेक्ष्येत चालू असलेले हे सर्व गुन्हेगारीचे प्रकार 'मृषाप्रत्ययिक' (झूठ) व 'अदत्तादानप्रत्ययिक' (चोरी) आहेत व परिणाम स्वरूप पापकर्मांचा बंध.

* भ. महावीरांची दृष्टी म्हणजे प्रकाशज्ञोत. जिकडे वळवू तिकडे प्रकाश. हा प्रकाशाचा ज्ञोत त्यांनी सामाजिकतेकडून वैयक्तिक आयुष्याकडे फिरविला. बॅटरी स्वतःवर आणली. आपल्या अंतरात्म्यात डोकावून पाहिले. मनातील संकलेश, खिन्नता, नकारात्मक विचार, चांगल्या-वाईट गोष्टी, सर्व खळबळी इ. मुळे आपले चित्त विनाकारण हीन-दीन-दुर्मनस्क होते. हे 'अध्यात्मप्रत्ययिक' (आत्म्यासंबंधी) क्रियास्थान आहे. त्याचा परिणाम क्रोध-मान-माया-लोभ वाढत जातात, वाईट-दुष्ट विचार वाढतात, निराशा येते व मजल आत्महत्येपर्यंत पोहोचते.

* अभिमानाने, मदाने, अहंगंड बाळगल्याने - दुसऱ्यांना कमी लेखणे, निंदा करणे, अवहेलना करणे इ. वृत्ती बळावतात. काहीही असताना किंवा काहीही नसताना सुद्धा आपण कशाकशाचा माज करत असतो - श्रीमंतीचा, राजकारणाचा, सत्तेचा, घराणेशाहीचा, रूपाचा, शक्तीचा, त्यातून गुंडगिरीचा, उच्चनीचतेचा, हे सर्व 'मानप्रत्ययिक' आहेत.

अहंगंडाचे आजचे स्वरूप आपल्याला पुढील शब्दात व्यक्त करता येईल. थोडा-अधिक ज्ञानाचा स्वाद जरी घेतला तरी साहित्य संमेलनात, शास्त्रज्ञांच्या समाजात किंबहुना नोबल पारितोषिक मिळविण्यासाठी अनेक 'पुल' लावले जातात व एकमेकांचे पाय ओढले जातात.

क्षेत्र कोणतेही असो, प्रत्येक ठिकाणी मीच पुढे असावे. क्रीडा असो की साहित्य असो की कला असो - 'अहंसेट्टे' (मी श्रेष्ठ) 'दुइयं कणिट्टे' (दुसरा कनिष्ठ) ही वृत्ती व परिणामस्वरूप जन्म-मरण चक्रात भ्रमण व विशेषतः मोठी नरकगमन.

* आपले प्रभुत्व व आपले स्वामित्व स्थापन करण्यासाठी छोट्यातल्या छोट्या अपराधासाठी मोठ्यातली शिक्षा. कुटुंबात सर्वांनी माझे ऐकावे, संपूर्ण घरादारावर माझाच हुकूम असावा, प्रत्येकाने माझ्याच आज्ञेत राह्ये - असा धाक, अशी हिटलरशाही व तशी प्रत्येकाच्या मनात दहशत निर्माण करणे हा भ. महावीरांच्या शब्दात 'मित्रदोषप्रत्यय' होय.

कौटुंबिक हिंसाचाराचे आजचे स्वरूप पुढील शब्दात व्यक्त करता येईल. नवरा कितीही दारूड्या असला व अजिबात कर्तृत्ववान नसला, बायकोच चार घरची कामे करून पोट भरत असली तरी नवऱ्याने बायकोला बडविणे व 'मीच तुझा स्वामी' ही भावना निर्माण करणे.

सासूने-नणंदने सुनेशी भांडण करणे, रॉकेल ओतणे, काड्या टाकणे, वांझ म्हणून एखादीचा अपमान करणे, विधवा म्हणून तिला हिणविणे, ती समोर आल्यास अपशकुन मानणे, घटस्फोट, हुंडाबळी, स्त्रीभ्रूणहत्या हे सर्व कौटुंबिक दोष आहेत. अशा प्रकारे स्त्रियांना शिक्षा देण्यात स्त्रियांचाच पुढाकार असतो. आईवडिलांना जीव नकोसा वाटणे इथपासून ते सुनेच्या छळापर्यंत. परिणामस्वरूप पारिवारिक क्लेश, दौर्मनस्य व दुर्भावना निर्माण होतात.

* अध्यात्माच्या नावाखाली बुवाबाजी, गंडे-दोरे-ताईत, हिप्नॉटिझम, हातचलाखी इ. द्वारे भक्ताच्या खऱ्या-खोट्या श्रद्धेचा फायदा घेऊन स्वतःची गैरमार्गाने आजीविका करणे, पैसे कमावणे व त्यासाठी दुसऱ्यांची फसवणूक, लूट, लबाडी, गळा कापणे, आर्थिक व लैंगिक पिळवणूक करणे, हा 'मायाप्रत्ययिकदंड' आहे. असे वागताना त्यांना त्याचा कधीही पश्चात्ताप होत नाही. पापभीरू माणूस थोडा तरी घाबरतो पण अशी फसवेगिरी करणारी माणसे दुसऱ्याला चुकीचे पटवून देण्यात यशस्वी होतात. कोडगे, निगरगट्ट, निर्ढावलेले, हाताबाहेर गेलेले असतात. जे करतात त्यात त्यांना चूक वाटतच नाही. ना पश्चात्तापाची भावना, ना सुधार, ना शल्य. अशाही मानसशास्त्रीय भावनांचा आविष्कार येथे दाखविला आहे. परिणामस्वरूप अशी माणसे कपटाकडून अधिकाधिक कपटाकडे वळून दुर्गतिगमन करतात.

* प्रबळ लोभाच्या आहारी जाऊन मंत्र-तंत्र, जारण-मारण विद्या, विविध प्रयोगांचा वापर, करणी, पुत्रप्राप्तीसाठी बळी, लिंगपूजा, जादूटोणा, भानामती, काळीजादू अशा अनेक देवीदेवतांच्या व धर्माच्या नावाखाली अघोरी साधना करणे व आपण गैरकृत्य करत आहोत असे मनातही येऊ न देणे.

काहीही करून पुत्र हवा, धनाचा हंडा हवा, शत्रूचे वाटोळे व्हायलाच हवे व अशा चुकीच्या गोष्टी साध्य करण्यासाठी कितीही जीवहिंसा करावी लागली तरी चालेल, कोणत्याही रहस्यमय साधनांचा आश्रय घ्यावा लागला तरी चालेल, लैंगिक कामवासना भोगण्यासाठी कितीही निंदनीय काम करावे लागले तरी चालेल. हा 'लोभप्रत्ययिक' आहे. अशा वृत्तींनी वारंवार आंधळे, मुके, बहिरे होण्याची संभावना.

* आता भ. महावीरांनी कॅमेराचा फोकस एकदम बदलला. अरे बंधूनों ! घाबरू नका. सर्व जग फक्त गुन्हेगारीनेच भरलेले नाही. या जगात चांगले लोक सुद्धा आहेत. आत्मकल्याण करणारेही आहेत. आत्मज्ञानाने चाले आचरण करणारे लोकही आहेत. अशी माणसे अजिबात बेफिकिरीने वागत नाहीत. दुर्लक्ष करत नाहीत. अप्रमादाने

राहतात. निष्पाप क्रिया करतात. काळजीपूर्वक करतात. कशातही त्यांचा अतिरेक नसतो. खाण्यात-पिण्यात-बोलण्यात-झोपण्यात-उठण्यात-बसण्यात सावधानता असते. मर्यादा असते. पापण्यांची सूक्ष्म उघडझाप सुद्धा अगदी होशपूर्वक करतात. ही 'ईर्यापथिक' क्रिया होय व परिणामस्वरूप त्यांच्या पापकर्मांचा बंध होत नाही.

भ. महावीरांनी त्या काळच्या समाजाच्या पार्श्वभूमीवर रेखाटलेले हे चित्र, तिन्ही काळात लागू होईल असे आहे. यात वाढत्या गुन्हेगारीचे १२ आयाम असून प्रत्येक अपप्रवृत्तीचा फोकस हा वेगळा आहे. जणूकाही हे 'सत्यमेव जयते'चेच १३ एपिसोड आहेत. सामाजिक वातावरणात जा, राजकारणात जा, असंस्कृत समाजात जा, घरात जा, मित्रमंडळीत जा किंवा अध्यात्मात जा - निष्पाप सूक्ष्म क्रियेपासून ते जन्मजन्मांतरीच्या तीव्र बंधापर्यंत, वरपासून ते खालपर्यंत, सर्व स्तराचे चांगले-वाईट दर्शन करविले. आदर्शवाद कसा असावा हे महावीरांना माहीत आहे पण 'पूर्ण आदर्शवाद' जगात असणार नाही, हेही त्यांना माहीत आहे. 'सर्व जगत् आर्य, सुसंस्कृत असावे', अशा भोळ्या-भाबड्या आदर्शवादात किंवा चुकीच्या धारणेत भ. महावीर मुळीच नाहीत. जैनांचे कोणतेही तीर्थंकर अशा भ्रमात मुळीच नाहीत की आम्ही उपदेश दिला की जगात जादूच्या कांडीसारखे सर्वत्र सुखद, शांततामय वातावरण निर्माण होईल, व तसे असतेच तर देव-मनुष्य या दोनच गती असत्या. नरक-तिर्थंकर या दुर्गति अस्तित्वातच नसत्या. अनादिकाळापासून मोक्ष जेवढा सत्य आहे तेवढीच गुन्हेगारीचे हे १२ आयामही आधी, आता व नंतरसुद्धा सत्यच राहणार आहेत. सद्विचार जेवढे खरे तेवढेच दुर्विचारसुद्धा.

गौतम बुद्धासारखे 'सर्व दुःखं' अशा दृष्टीने जगाकडे पाहणे ठीक नाही. चार्वाकासारखे 'ऋणं कृत्वा घृतंपवित्' असेही जगाकडे पाहणे योग्य नाही, वैदिकांप्रमाणे, 'दुष्ट खूप झाले म्हणून अवतार घेऊन त्यांचे निवारण करेण्ही शक्य नाही.' जैन परंपरेनुसार जग हे सुख-दुःखांचे संमिश्रण आहे व राहणार. चांगल्या-वाईट प्रवृत्ती आधी होत्या क्ंतरही राहणार. अशा जगाचे जसे आहे तसे वास्तविक स्वरूप तीर्थंकर प्रकट करतात, हे त्यांचे 'सर्वज्ञत्व' आहे. सर्वांना उपदेश देण्याचे कामही तीर्थंकर करतात. पण तरीही काही जीव स्वतःमध्ये काहीही बदल करत नाहीत. अशा व्यक्तींना लगाम घालणेही शक्य नाही. त्यांनाच जैन परिभाषेत 'अभवी जीव' म्हटले आहे.

गुन्ह्यांची एकापेक्षा एक वरचढ रूपे सूत्रकृतांगातील या अध्ययनात नोंदवली आहेत. सत्प्रवृत्तींचे मार्गदर्शनही केले आहे. कोणता मार्ग चोखाळायचा ते व्यक्तीच्या विवेकशक्तीवर सोपवले आहे. त्यांच्या त्रिकालदर्शी प्रज्ञेला प्रणाम !!!

(४) सूत्रकृतांगात निर्दिष्ट 'पापश्रुत' अर्थात् मंत्र, तंत्र, अद्भुतविद्या

व्याख्यान : डॉ. सौ. नलिनी जोशी

शब्दांकन : डॉ. सौ. अनीता बोथरा

'इन्स्टंट'चे युग आहे. विचार-विनिमय करायला वेळ नाही. सबूरी नाही. स्वतःवर विश्वास नाही. अधिक पुरुषार्थही करायचा नाही. येणाऱ्या प्रतिकूल परिस्थितीशी ठामपणे लढा देण्याचे मनोबलही नाही. परिणामस्वरूप माणूस कोणाच्या ना कोणाच्या आहारी जातो व आपले आयुष्य कीर्तिसंपन्न, आरोग्यसंपन्न, धनसंपन्न व बुद्धिसंपन्न बनविण्याचे 'इन्स्टंट' उपाय शोधतो.

जसे - आजारी पडलो तर 'छू मंतर' केल्याप्रमाणे, कोणा एकाचा मंत्र, अंगारा, धूपारा मिळाला की त्वरित तंदुरूस्त होण्याची आशा ; गरिबी दूर करण्यासाठी कोणा एका बुवाकडे जातो, बर तो म्हणतो - थांब रे बाबा ! तुझ्यावर कोणीतरी चांगलीच करणी केली आहे, तर मी तुला उपाय देतो ; कितीही प्रयत्न करून धंद्यात यशच मिळत नसेल तर दुसऱ्यांवरती जादू-टोण्याचा आरोप व तो दूर करण्यासाठी पळापळ ; मूलबाळ होत नसेल तर

देवाला साकडं घालणे व नवस मागणे ; गाय, बैल इ. प्राणी खरेदी करायचे असतील तर त्यांच्या शरीराच्या लक्षणावरून व चिह्नांवरून त्यांना तपासून घेणे, हे आणि असे अनेक उपाय आपण आयुष्यात सुखी होण्यासाठी करत असतो व हेच आजच्या समाजाचे वास्तव चित्र आहे.

त्याचेच पडसाद दूरदर्शनवरही आपल्याला दिसून येतात. बुरी नजरो से बचने के लिए, घर-दुकान-कारखानों के वास्तुदोष समाप्त करने के लिए, परीक्षा में अच्छे गुण प्राप्त हो इसलिए, नोकरी तथा संतान की उन्नति के लिए, विवाह में आये विघ्न दूर होने के लिए, पत्रिका में रहे दोषों को दूर करने के लिए, स्वास्थ्य में आनेवाले संकटों को दूर करने के लिए, दुर्घटना का योग टल जाय इसलिए, आदि आदि सभी संकटों को भगाने के तथा सौभाग्य के रास्ते खोजने के उपाय हमारे पास हैं। तो आओ ! - महालक्ष्मी यंत्र, शिव-हनुमान महायोग यंत्र, नवग्रह यंत्र, नजरसुरक्षा कवच, कालचक्र, राशिभविष्य इ. द्वारा आपके जीवन में आये सभी विघ्न तुरंत टल जायेंगे।

अशा प्रकारे सतत, विनाव्यत्यय दूरदर्शनवर जाहिरातींचा भडिमार होत असतो. आपणही कोणत्या ना कोणत्या संकटात अडकलेलोच असतो. त्यामुळे अशा प्रकारच्या अनेक तंत्र, मंत्र, विद्या आणि चमत्कारांनी आपलंही डोकं भांबावून जाते. ऐहिक सुखासाठी आपणही आकर्षित होऊन त्याच्या आहारी जातो व त्याचा अश्रय घेतो.

सूत्रकृतांगातील 'क्रियास्थान' अध्ययनात अशा प्रकारच्या विद्यांना 'पापश्रुत' म्हटले आहे. तेथे 'पापश्रुत' कशाकशाला म्हणावे याची बरीच मोठी यादी दिली आहे. जसे - स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी यांची शुभाशुभ लक्षणे सांगणारे शास्त्र ; अष्टमहानिमित्तशास्त्र ; ग्रह-नक्षत्र-तारे यांचे शास्त्र ; भूशास्त्र ; शकुनशास्त्र ; मोहिनीविद्या ; तत्काळ अनर्थ करणारी विद्या ; रोग निर्माण व रोग दूर करण्याचे शास्त्र ; भूतबाधा करण्याचे शास्त्र ; धूळ, केस, मांस, रक्त इ.च्या वृष्टीचे फळ सांगणारे शास्त्र म्हणजेच 'काळ्या जादू'चे शास्त्र ; शाबरी, द्राविडी, गांधारी इ. भौगोलिक प्रदेशाच्या नावावर आधारित, प्रदेशानुसारी विद्या ; अदृश्य होण्याची विद्या. या आणि यासारख्या अनेक विद्या व शास्त्रांचे विवेचन तेथे दिले आहे. हा त्याकाळच्या समाजाचा जणू आरसाच आहे.

ज्याअर्थी अशा अनेक विद्यांचे व शास्त्रांचे वर्णन तेथे आले आहे त्याअर्थी मनात प्रश्न निर्माण होतो की त्याकाळी सुद्धा अशा प्रकारच्या विद्या सामाजिक वातावरणात अस्तित्वात होत्या का ? प्रत्यक्षात त्याचा वापर होत होता का ? तर उत्तर होकाराकडेच जाते. फक्त जैनच नव्हेत तर बौद्ध व वैदिक अशा तिन्ही परंपरेतील अनेकग्रंथात वेगवेगळ्या विद्यांचे वर्णन आढळते. अथर्ववेदात मंत्र, तंत्र वशीकरण, जादूटोणा, अंधश्रद्धा यांचा प्रभाव असलेल्या समाजाचे चित्रण आढळते. म्हणूनच आरंभी वैदिकांनी तीन वेदांनाच पवित्र मानले. अथर्ववेदाला 'लोकवेद' असे संबोधले. बौद्ध परंपरेचे कालपरत्वे जे चार संप्रदाय झाले त्यापैकी एक संप्रदाय तंत्र व मंत्रांच्या उपासनेवरच आधारित होता.

जैन साधुआचारविषयक ग्रंथात आदर्श तर असा आहे की, अशा विद्यांचा उपजीविकेसाठी या अन्य कोणत्याही कारणासाठी वापर करू नये. जर केला तर परिणामस्वरूप परलोकात अहित होईल. मृत्युनंतर असुरसंबंधी कित्त्विष देव व्हाल. त्यानंतर पुढील जन्मात आंधळे, मुके व्हाल. एकंदरीतच या विद्या पापश्रुत आहेत व त्या तुम्हाला पापी योनीमध्ये ढकलणाऱ्या विद्या आहेत.

पातंजलयोगसूत्रातील 'विभूतिपादा'त सिद्धींचे वर्णन करताना तेथे स्पष्टतः म्हटले आहे की - ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः। (पा.योग ३.३७) याचाच अर्थ असा की अशा सिद्धी, समाधी प्राप्त करण्यात अथवा ज्ञान प्राप्त करण्यात विघ्ने आहेत, अडथळा आहेत. योगसूत्रातील वर्णिलेल्या या सिद्धी या अघोरी नसून कल्याणकारक आहेत तरीही त्या तुमच्या उन्नतीत बाधा आणणार असल्यामुळे त्यांच्या निषेधाचाच सूर आहे.

म्हणजेच या विद्या तुमच्या आध्यात्मिक प्रगतीत अडथळा आहेत अथवा त्यामुळे तुमचे अधःपतन होणार आहे असे स्पष्ट उल्लेख असतानाही वास्तव काही वेगळेच आहे.

साक्षात् जैन आगमांमध्ये डोकावले असता असे दिसते की -

भगवतीसूत्रात तेजोलेश्या व शीतलेश्येचा वापर, अंतगडसूत्रात यक्षाने अर्जुनाच्या शरीरात केलेला प्रवेश, छेदसूत्रातील साधूंची अंतर्धान पावण्याची अथवा अदृश्य होण्याची विद्या, गौतम गणधरांच्या अणिमा, गरिमा इ. अनेक सिद्धी तथा क्षीर इ. लब्धी, सनत्कुमार चक्रवर्तीचे स्वतःच्या थुंकीने अनेक रोग दूर होण्याचा उल्लेख, स्थूलभद्रांनी आपल्या बहिणींना ज्ञानाचा चमत्कार दाखविण्यासाठी घेतलेले सिंहाचे रूप, अचलाराणीने दृष्टी फिरविली व महामारी रोग दूर झाला इत्यादी इत्यादी ---

इतकेच नव्हे तर सर्वच कथाग्रंथ विद्या-सिद्धी, अद्भुतता व चमत्कारांनी भरलेले आहेत. भक्तामरस्तोत्राची अद्भुतता तर सर्वज्ञातच आहे. कुंदकुंदाचार्य, कालकाचार्य, पादलिप्ताचार्य, खपुटाचार्य, नागार्जुनाचार्य इ. आचार्यांच्या चरित्रात अनेक अद्भुत विद्यांचा निर्देश व इतकेच नव्हे तर त्यांनी त्याचा प्रत्यक्ष उपयोगही केलेला दिसून येतो. 'कुमारपालप्रतिबोध'सारख्या ग्रंथात 'इंद्रजाल' प्रयोग, अंतर्धान पावण्याची विद्या, चारणविद्या अशा अनेक विद्या आढळतात.

प्रत्यक्ष आगमात व त्यानंतरच्या अनेक ग्रंथात पापश्रुतातील या विद्यांचा व चमत्कारांचा प्रत्यक्षात केलेला वापर पण, त्याचबरोबर सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन, आवश्यकसूत्र तथा आवश्यकचूर्णि इ. ग्रंथात याच विद्यांना 'पापश्रुत' म्हणणे असे दुहेरी परस्परविरुद्ध वर्णन का आढळते ? आदर्श तर दाखवून दिला आहे की या विद्या शिकूही नयेत व प्रत्यक्ष त्याचा वापरही करू नये. परंतु वस्तुस्थिती याच्या बरोबर विरुद्धच दिसते. तर त्याची कारणमीमांसा देण्याचा प्रयत्न केला आहे -

- * जैन परंपरेतील आकर ग्रंथ म्हणून ओळखल्या जाणाऱ्या 'दृष्टिवाद' या ग्रंथातच अशा अनेक विद्यांचा समावेश होता.
- * चमत्कारी विद्या इतर परंपरेत आहेत तर जैन परंपरेतही आहेत, हे दाखविण्यासाठी.
- * समाजात आपले अस्तित्व टिकवून ठेवण्यासाठी.
- * राजदरबारात आपला प्रभाव पाडण्यासाठी.
- * सामाजिक दबावामुळे आपले श्रेष्ठत्व सिद्ध करण्यासाठी.
- * अनिष्ट दूर करण्यासाठी.
- * प्रसंगी जनहितासाठी.
- * धर्मप्रभावनेसाठी.

काहीही असो, कारण कोणतेही असो, या विद्यांचा वापर आम समाजात चालूच होता. पापश्रुतातील या विद्या समाजात अस्तित्वात होत्या. प्रत्यक्ष प्रसारात होत्या, प्रचलित होत्या, त्यांचा अभ्यास होत होता व प्रत्यक्ष उपयोगही चालू होता. पण तरीही जैन आगमात त्या शिकायला व त्याचा प्रत्यक्ष वापर करायला विरोध आहे आणि म्हणूनच -

* 'दृष्टिवाद' नावाच्या अंग आगमात अनेक प्रकारच्या विद्या, त्याचे प्रत्यक्ष प्रयोग, त्याचे विधिविधान, ते सिद्ध करण्याची पद्धती इ.चे ज्ञान होते व त्यामुळेच त्याचा लोप झाला असावा किंवा केला असावा.

* ज्या आचार्यांनी अशा विद्यांचा वापर केला त्यांचे नाव 'नंदीसूत्रा'तील स्थविरावलीमध्ये नसून 'प्रभावक आचार्य' म्हणून त्यांना नोंदविले आहे.

* 'अति तेथे माती' या उक्तीनुसार एकदा का या विद्यांचा वापर सुरू झाला की त्याचा अतिरेक व्हायला वेळ लागत नाही. म्हणून पापश्रुत विद्यांचा वापर करू नये असे निर्देश दिलेले दिसतात.

* लौकिक व तात्कालिक सुखात न अडकता, पारलौकिक व आध्यात्मिक प्रगतीत विघ्ने न येण्यासाठी या पापश्रुताचा निषेध असावा.

अर्थातच जैनांनी तत्त्वज्ञानाची विशिष्ट बैठक व शुद्ध आचाराच्या उपदेशातून वामाचाराकडे झुकण्याच्या प्रवृत्तीला यशस्वीपणे आवर घातला. बौद्धांमध्ये वामाचार व शिथिलाचार यांचे प्रमाण जसजसे वाढत गेले तसतसा

दहाव्या शतकाच्या आसपास भारतातून बौद्धधर्म जवळजवळ हद्दपार झाला. हिंदूंच्या बाबतीत काही वेगळेच घडले. जैन आणि बौद्ध धर्मांमध्ये जाऊ पाहणाऱ्या स्त्रियांना व शूद्रांना व्रतवैकल्याचे व भक्तीचे मार्गदर्शन करून त्यांना हिंदूधर्मात रोखून ठेवले.

सर्व धर्मांनी आपापल्या परीने प्रयत्न केले तरी अशा विद्यांचा पगडा कायम आहे. आजच्या घडीला संपूर्ण समाजाच्या परिप्रेक्ष्येत असाच दुहेरीपणा चालू आहे. प्रगतशील विज्ञानयुगात एकीकडे आपण विज्ञानाद्वारे ग्रहांवर पोहचत आहोत. वेगवेगळ्या ज्ञानशाखा उदयाला येत आहेत. निसर्गाचा तसेच मनुष्यवस्तीचा शोध लावण्याचा प्रयत्न चालू आहे. अंधश्रद्धा निर्मूलनाचे काम चालू आहे. पण तरीही अंधश्रद्धेच्या आहारी जाणारा फार मोठा वर्ग आजही दिसतो आहे. म्हणजेच जैनग्रंथातच अशी दुहेरी व परस्परविरोधी वचने नाहीत तर प्रत्यक्ष समाजातही तेच चालू आहे किंबहुना वाढत आहे. मनुष्यप्रण्याचा 'मानसिक कमकुवतपणा' व 'दुसऱ्याच्या आहारी जाण्याची वृत्ती' या दोन गोष्टींचा फायदा सर्व प्रसारमाध्यमे घेत आहेत. त्याला यथेच्छ खतपाणी घालून, अंधश्रद्धेचा वृक्ष अधिकाधिक फोफावण्यासाठी प्रयत्न करत आहेत. पण तरीही काळीजादू, व्यभिचार, हिंसा यावर आधारित ज्या विद्या आहेत त्यांच्या अतिरेकावर लगाम लागेल, असा आशावाद नक्कीच ठेवू या !!!

(५) आजची जैन जीवनपद्धती व वनस्पतिसृष्टी

व्याख्यान : डॉ. नलिनी जोशी

शब्दांकन : डॉ. अनीता बोथरा

सूत्रकृतांगाच्या दुसऱ्या श्रुतस्कंधातील तिसऱ्या अध्ययनाचे नाव आहे 'आहारपरिज्ञा'. विश्वातील सर्व जीवजाती कोणकोणत्या प्रकारचा आहार घेतात ते या अध्ययनात विस्ताराने सांगितले आहे. एकेंद्रियांपासून सुरवात केली असली तरी वनस्पतिसृष्टीचा विचार सर्वात प्रथम केला आहे. अध्ययनाचे एकंदर प्रतिपाद्य पहात असताना, अध्ययनाच्या प्रस्तावनेच्या निमित्ताने जे विचारमंथन झाले, त्याचा सारांश या लेखात प्रस्तुत केला आहे.

आचारांग, सूत्रकृतांग, प्रज्ञापना, जीवाभिगम इ. अर्धमागधी प्राकृत ग्रंथात व मूलाचार, गोम्मटसार (जीवकांड) इ. शौरसेनी ग्रंथात वनस्पतींचे विवेचन सूक्ष्मतेने व विस्ताराने आढळते. वनस्पतींना एकेंद्रिय जीव मानल्यामुळे, वनस्पतींकडे पाहण्याची दृष्टीच अतिशय भावनात्मक आहे. वनस्पतींचा गति, जाति, योनि, लिंग, जन्म, इंद्रिय, शरीर इ. अनेक दृष्टींनी, खोलवर विचार केला आहे आणि म्हणूनच वनस्पतींकडे पाहताना हिंसा-अहिंसेची दृष्टी केंद्रस्थानी ठेवली आहे. 'सर्वजीवसमानतावाद' या तत्त्वानुसार, 'वनस्पती कनिष्ठ व मनुष्य श्रेष्ठ' असेही पाहण्याची जैनांची दृष्टी नाही. परिणामी आचारांगात वनस्पती व मनुष्यांची तुलना करून दोघांना समान पातळीवर आणून ठेवले आहे.

'जीवो जीवस्य जीवनम्' व 'परस्परपग्रहो जीवनाम्' या सूत्रानुसार निसर्गातील प्रत्येक जीव दुसऱ्या जीवाच्या आधारावर जगत असतो. जगण्यासाठी प्रत्येक जीवाला कोणता ना कोणता आहार घ्यावाच लागतो. जैन परंपरेत मांसाहार तर सर्वथा निषिद्धच मानला आहे व शाकाहारातही अनेक नियम तसेच मर्यादा सांगितल्या आहेत.

शाकाहार म्हणजे वनस्पतिसृष्टीचा आहार. दैनंदिन व्यवहारात व स्वयंपाकघरात वनस्पतींच्या छेदन-भेदनाशिवाय आपले कोणतेही काम होत नाही. तरीही कांदे, बटाटे इ. कंदमूळांचा त्याग, मोड आलेल्या कडधान्यांचा त्याग, बहुजीवी वनस्पतींचा त्याग, पालेभाज्यांचा त्याग अशाप्रकारे धार्मिक दृष्टीने त्याग करण्याचे जैन समाजात प्रचलनही आहे. म्हणजेच वनस्पतींचा उपयोग करताना अतिशय सावधानतेचा इशारा तर आहेच शिवाय मर्यादाही करण्यास सांगितल्या आहेत. 'वनस्पतींमधील चैतन्य' या दृष्टीने मर्यादेच्या रूपाने त्यांच्या रक्षणाची असलेली दृष्टी, ही एक बाजू झाली. परंतु फक्त रक्षणच करून चालेल काय ? हा विचारणीय मुद्दा आहे. कारण रक्षण करायचे म्हटले तर कितीही कमी खायचे ठरविले तरी आहाराशिवाय आपण जिवंत राहू शकत नाही. वनस्पतींचा उपयोग तर प्रतिदिन

चालूच आहे आणि म्हणूनच वनस्पतींच्या सर्व जाती-प्रजाती टिकवून ठेवण्यासाठी संरक्षणाबरोबर संवर्धनही तितकेच महत्त्वाचे ठरते.

भ. ऋषभदेवांचा जीवनकाळ चालू होता. अवसर्पिणी काळातील तिसरा 'सुषमा-दुषमा' आरा सुरू होता. ऱ्हासकाळ सुरू झाला होता. कल्पवृक्षाचे वैभव क्षीण झाले होते. म्हणजेच सामान्य भाषेत आपण असे म्हणू शकतो की, आपल्या गरजा निसर्गातून, ज्या अगदी सहज पूर्ण होत होत्या त्या आता होईनाशा झाल्या. त्यामुळे आहे त्या निसर्गावर काम भागवण्याचे दिवस संपले. म्हणजेच नवनिर्मितीचे दिवस आले. म्हणून ऋषभदेवांनी वृक्षांची लागवड कशी करावी, शेती कशी करावी, अन्न कसे बनवावे, व्यापार कसा करावा, वस्त्रे कशी बनवावीत इ. अनेक जीवनोपयोगी साधनांचा क्रियात्मक उपदेश दिला. म्हणजेच ऋषभदेवांच्या चरित्रातून आपल्याला असाच संदेश मिळतो की जर निसर्गाचे वैभव क्षीण होत असेल तर आपण ते प्रयत्नपूर्वक वाढविले पाहिजे.

'ज्ञाताधर्मकथा' या अर्धमागधी आगमातील 'रोहिणी' अध्ययनात, रोहिणीसारख्या एका कर्तव्यदक्ष स्त्रीने, सासऱ्याने दिलेल्या पाच तांदळांच्या अक्षदा माहेरी पाठविल्या. पाचच तांदळांची शेती करण्यास सांगितली. पुनःपुनः पेरणी करविली. पाच वर्षांनी त्या पाच अक्षदांचे अनेक गाड्या भरून तांदूळ निर्माण झाले. त्याठिकाणी भातशेतीचे सुंदर वर्णनही आढळते. म्हणजेच या कथेत भ. महावीरांचा संदेश केवळ संरक्षणाचा नसून संवर्धनाचाही आहे. पुढे याच ग्रंथात प्रवासादरम्यान जाता-येता विश्रांती घेण्यासाठी 'नंदमणिकारा'ने एक रम्य वनखंड व पुष्करिणीही निर्माण केल्याचे उल्लेख आढळतात. 'उपासकदशा' आगमात 'आनंद' नावाचा वैश्य श्रावक रहात होता. त्याच्याकडे ४०,००० गार्यांचे गोकुळ व ५०० नांगरांनी होणारी शेती होती. खऱ्या अर्थाने तो शेती, पशुपालन व व्यापार करणारा वैश्य होता. भ. महावीर स्वतः अनेक उद्यानांत उतरत असत. अशाप्रकारच्या सर्व उल्लेखांवरून निसर्ग समृद्ध करण्याचेच संकेत आढळतात. अर्थातच जसजसे निसर्गाचे वैभव कमी कमी होत जाईल तसतसे माणसाने त्याचे रक्षण व संवर्धन प्रयत्नपूर्वक व विचारपूर्वक केले पाहिजे असा बोध भ. ऋषभदेवांच्या चरित्रातून व महावीरवाणीतून आपल्याला मिळतो. पण प्रत्यक्ष जैनांचा आचार काही वेगळाच आहे.

जैनग्रंथात वनस्पतींचे वर्णन कितीही अचूक असले तरी महाभारतातील (शांतिपर्व) वर्णनाप्रमाणे - 'वृक्ष हे आमचे मित्र आहेत, पुत्र आहेत. ते वातावरण शुद्ध ठेवतात. त्यांना आपण वाढविले पाहिजे', असे स्पष्ट आदेशात्मक संकेत जैनवाङ्मयात मिळत नाहीत. जैनांची एकंदर दृष्टीच अशी दिसते की वृक्षांच्या जवळ जाऊ नका, त्यांना तोडू नका, त्यांना हात लावू नका, त्यांचा वापर करू नका, असा जैनांचा वनस्पतींकडे पाहण्याचा दृष्टिकोण का असावा याची कारणमीमांसा शोधण्याचा प्रयत्न करू.

जैन परंपरा एक 'श्रमण परंपरा' म्हणून प्रसिद्ध आहे. संन्यास आणि निवृत्तीला प्राधान्य देणारा साधुधर्म त्यात मुख्यत्वे करून सांगितला आहे. आजूबाजूच्या सर्व निसर्ग, चैतन्यमय जीवांनी भरलेला असल्यामुळे त्यातील घटकांचा कमीत कमी वापर केला पाहिजे, हे अहिंसामय साधुधर्माचे मुख्य मंतव्य आहे. साधुधर्माच्या जोडीज्जीनेच श्रावकधर्माचीही वाढ झाली. ती मुख्यतः साधुवर्गानेच केल्यामुळे साहजिकच साधुधर्मातील नकारात्मकता त्यात प्रतिबिंबित होत राहिली. श्रावकांनीसुद्धा त्याचेच ग्रहण करून, आपल्या अधिक विचारांनी वर्तणुकीचे नवनवीन नियम शोधले. नकारात्मकता, बचावाची दृष्टी व कमीत कमी वापर हे साधुआचाराशी सुसंगत असले तरी, श्रावकांच्या जीवनध्येयाशी ते तितकेसे सुसंगत ठरत नाही.

समजा एक चांगले वाढलेले शाकाहारी जेवण एखाद्या जैनेतरासमोर ठेवले तर तो नमस्कार करून म्हणेल, 'अन्न हे पूर्णब्रह्म'. आनंदाने त्या अन्नाचे भक्षणही करेल. याउलट जैन माणसासमोर ठेवले तर प्रत्येक पदार्थाविषयी शंका, संशय व चिकित्सा यांनी त्याच्या मनात काहूर माजेल. खावे की खाऊ नये या संभ्रमात तो पडेल. एकाच अन्नाकडे पाहण्याचे किती परस्परविरोधी दृष्टिकोण आहेत हे ! परिणामस्वरूप पिढ्यान्पिढ्या जैन समाजाला वनस्पती व प्राणिसृष्टीची साधी माहिती सुद्धा नाही. कोणतेही झाड, पान, फूल, फळ, पशु, पक्षी सहजी ते ओळखू शकत नाहीत. कारण झाडे लावणे, झाडांच्या जवळ जाणे, पक्षीनिरीक्षण करणे हे त्यांच्या गावीच नाही. परिणामी

जागरूक रहाण्याऐवजी नकारात्मक दृष्टीच वाढीस लागली.

आचारांगासारख्या अर्धमागधी आगमात दर क्षणाला सजीवसृष्टीकडे पाहण्यास सांगितले आहे. संवेदनशील राहण्यास सांगितले आहे. आजूबाजूच्या निसर्गातील पृथ्वी, अप्, तेज, वायू, वनस्पती इ. एकेंद्रिय जीवच नव्हे तर संपूर्ण जीवांच्या प्राणिरक्षेविषयी जागरूक व अप्रमत्त राहण्याचा संदेश दिला आहे. जर आपण त्यांच्याकडे सारखे पापात्मक दृष्टीने पाहू तर त्यांच्या जवळ जाणे, त्यांचे आपल्या मुलाबाळांप्रमाणे संगोपन करणे, त्यांच्यावर प्रेम करणे, या भावना कशा वाढीस लागतील ?

वनस्पतींना इजा होईल, त्यांना दुखापत होईल म्हणून आपला वापर तर थांबत नाही ना ? जपा म्हणजे काय ? कमी वापरा म्हणजे काय ? अपरिग्रहाचा खरा अर्थ काय ? – जर आपण उपयोग करतो तर अशाप्रकारचे 'कातडी बचावू' धोरण काय कामाचे ? उलट वंशसातत्य टिकवून ठेवण्याची इच्छा असलेल्या प्रत्येक मनुष्याने वनस्पतींचे संरक्षण व संवर्धन आपल्या मुलाबाळांप्रमाणे केलेच पाहिजे.

प्रत्येक जैनाचे कर्तव्य आहे की -

१) आपल्या घरासमोर एक छोटीशी का होईना 'बाग' असावी ज्यामुळे आपल्या घरातील सर्व ओला कचरा मातीत टाकून त्याचे खत निर्माण होईल. (ही जैनदृष्टीने 'परिष्ठापना समिति' आहे.)

२) पाण्यालाही अप्कायिक जीव मानणाऱ्या जैनांनी, निसर्गतः पावसाच्या रूपाने मिळणारे पाणी 'rainwater harvesting' च्या रूपाने उपयोगात आणले पाहिजे.

३) सूर्यापासून मिळणाऱ्या उष्णतेचा 'सोलर' बसवून उपयोग केला पाहिजे ज्यामुळे विजेची बचत अर्थातच अग्निकायिक जीवांचे आणि पर्यायाने अप्कायिक जीवांचेही संरक्षण होईल.

४) शक्यतो नैसर्गिक व कृत्रिम दोन्ही फुलांचा वापर करू नये. टाळता येत असेल तर टाळा. कृत्रिम फुलांचा वापर तर मुळीच करू नका. कारण त्यांना निसर्गात पुन्हा जिरवता येणार नाही. रासायनिक प्रक्रियेद्वारा त्यांचीनिर्मिती होत असल्यामुळे पर्यावरणाला ते अधिकच घातक आहेत.

५) दानांमध्ये अग्रेसर असणाऱ्या व संपूर्ण प्राणिरक्षेविषयी जागरूक असणाऱ्या जैनांनी फक्त मंदिर, मूर्ति, तीर्थयात्रा, गोरक्षण इ. दानांबरोबरच, सर्व दानात श्रेष्ठ 'अभयदान', त्याचे महत्त्व लक्षात घेऊन 'अभयारण्या' सारख्या प्रकल्पांना निधी पुरविला पाहिजे.

नव्या पिढीमध्ये ही जागृती निर्माण झाली आहे. त्या पिढीची नीरस जगण्याची वृत्ती नाही. ज्याचा आपण उपयोग करतो, त्याच्या निर्मितीपासून पलायन करण्याचा त्यांचा स्वभाव नाही. तर आपणही आपल्या निषेधात्मक दृष्टीला दूर करून सकारात्मक दृष्टीचे नवे वळण देऊ या.

'पर्यावरणरक्षणाला अनुकूल धर्म', आपण खऱ्या अर्थाने प्रत्याक्षात आणू या. जैनधर्माच्या हृदयाशी सुसंगत वागू या. अतिरेक तर नक्कीच टाळू या. 'ecofriendly', 'biodiversity' असे फक्त शाब्दिक उपयोग न करता, खऱ्या अर्थाने निसर्गाच्या जवळ जाऊ या. निसर्गाचा आनंद घेऊ या. कर्तव्यदक्ष राहू या. झाडांच्या जवळ आपण जाणे याचा अर्थ फक्त झाडांचा आनंद व ऑक्सिजन घेणे एवढाच नव्हे तर मी जे निःश्वास टाकते ते खरोखरच झाडांनाही तितकेच जीवनदायी आहेत, अशीही दृष्टी ठेवू या. आपल्या संरक्षणरूपी जमेच्या भक्कम बाजूबरोबरच, संवर्धनाची दुर्बल बाजू लक्षात घेऊन, तिला सक्षम बनविण्यासाठी भ. ऋषभदेवांचा क्रियात्मक आदर्श समोर ठेवू या व 'अधी-अधूरी' बाजूही परिपूर्ण करू या. एक सामाजिक चळवळ या स्वरूपात आता 'ऋषभभगवान वृक्ष लागवड योजना' खऱ्या अर्थाने आपलीशी करून प्रत्यक्षात आणू या.

(६) सूत्रकृतांगातील वनस्पतिसृष्टी व सद्यस्थिती

व्याख्यान : डॉ. नलिनी जोशी

शब्दांकन : डॉ. अनीता बोथरा

सूत्रकृतांगातील 'आहारपरिज्ञा' अध्ययनात एकेंद्रियांपासून ते पंचेंद्रिय जीवांच्या आहारासंबंधीची चर्चा आहे. त्यातही इतर चार एकेंद्रियांच्या तुलनेने वनस्पती या बऱ्याच प्रमाणात दृश्य व मूर्त स्वरूपात असल्याने व मानवांच्या दृष्टीने त्या अतिशय उपयुक्त असल्याने, वनस्पतींचा विचार सर्वात प्रथम व अधिक विस्ताराने केला आहे. वनस्पतींची उत्पत्ती, वाढ व सजीवता निरीक्षण करण्याजोगी आहे. मानवी शरीराप्रमाणे त्यांच्यातील बदलही आपल्या प्रत्ययास येतात व म्हणूनच जैनग्रंथात वनस्पतिविचार अधिक सखोलपणे व सूक्ष्मपणे केलेला दिसतो.

सूत्रकृतांगात वनस्पतींच्या तीन 'योनि' सांगितल्या आहेत. योनि म्हणजे वनस्पतींचे उत्पत्तीस्थान.

(१) पृथ्वीयोनिक वनस्पती : काही वनस्पतींचा आधार किंवा योनि पृथ्वी असते. पृथ्वीच्या आधाराने वनस्पतींची उत्पत्ती होते. सर्व प्रकारची फळझाडे, सूक्ष्म अशा कुश गवतापासून ते बांबूसारख्या स्थूल गवताचे सर्व प्रकार, आयुर्वेदिक सर्व औषधी वनस्पती व धान्ये, जमिनीलगत वाढणारे शेवाळ इ. छोट्या प्रजाती व गुल्म, गुच्छ इ. झुडपांचे सर्व प्रकार 'पृथ्वीयोनिक वनस्पती' आहेत.

(२) उदकयोनिक वनस्पती : पाण्यात राहणाऱ्या, पाण्यातूनच आहार घेणाऱ्या व पाण्यातच वाढणाऱ्या वनस्पती 'उदकयोनिक वनस्पती' होत. अवक, पनक, शैवाल, कलम्बूक, हड, कसेरूक इ. उदकयोनिक वनस्पती आहेत. डिसकव्हेरीमध्ये अथवा पाण्याखालील सफारीत, अशा प्रकारच्या वनस्पतींचे एक अद्भुत विश्वच पहावयास मिळते. जितकी विविधता पृथ्वीवर नाही त्याहून अधिक विविधता पाण्याखाली पहावयास मिळते. जेवढे रंगांचे वैविध्य दृश्य जगात आहे त्याहून अनेकविध प्रकारच्या खडकांचे रंग व वनस्पतींचे रंग पाण्याखाली पहावयास मिळतात. जैनग्रंथात नोंदविलेल्या तांदुळाच्या आकाराच्या छोट्या माश्यापासून ते महाकाय मत्स्यापर्यंतच्या सर्व जाती पाण्याखालीच पहावयास मिळतात. इतके वैचित्र्य समुद्राच्या पोटात आहे. वनस्पतींची विविधताही आहे व त्यांच्या आहाराचे वर्णनही सूत्रकृतांगात केले आहे. पाण्याखालील विश्व काही गूढच आहे.

(३) वनस्पतियोनिक वनस्पती : वनस्पतियोनिक वनस्पती म्हणजे, 'एक वनस्पती दुसऱ्या वनस्पतीचे उत्पत्तिस्थान असणे.' खोड, फांद्या, पाने, फुले, प्रवाळ, काटे, तुरे इ. सर्व एका मुख्य वनस्पती जीवाचे अध्यारोह आहेत. म्हणजे त्या वनस्पतीच्या आधाराने वाढणारे आहेत. मुख्य झाडाचा जीव एक असला तरी ती वनस्पती जेव्हा स्वतःला वेगवेगळ्या रूपात रूपांतरित करते तेव्हा खोड, फांद्या इ. सुद्धा वेगवेगळे स्वतंत्र-स्वतंत्र जीव होतात. माणूस एकच असला तरी त्याच्या केस, त्वचा, हाडे, मांस, रक्त इ. सर्व अवयवांच्या पेशींची मूळ रचना वेगवेगळी असते. त्याचप्रमाणे वनस्पतिशास्त्राच्या दृष्टीनेही खोड, पान इ.च्या पेशी वेगवेगळ्या असतात. याच अर्थाने प्रत्येक पाना-फुलाचा जीव वेगळा असतो असे जैनशास्त्र म्हणते. बागकाम करताना लक्षात आलेले विशेष निरीक्षण येथे नोंदवावेसे वाटते. जास्वंदीच्या फुलांचे दिवस होते. निरीक्षणानंतर असे लक्षात आले की, फांदीला १-२ फुलेयेणार असतील तर १०-१२ पाने गळूनच पडतात. फुले येण्यासाठी पानांना आपला प्राण त्याग करावा लागतो. 'परस्परपङ्को जीवनाम्' या जैनग्रंथात नमूद केलेल्या सूत्राप्रमाणे प्रत्येक जीव दुसऱ्या जीवाला कोणत्या ना कोणत्या प्रकारे ष्योगी पडतच असतो. विशेष म्हणजे फांदीला ज्या क्रमाने पाने येतात, त्या क्रमाने गळत नाहीत. अनुभव असा आहे की, कित्येकदा जून पान तसेच राहते व नवीन, छोटे, कोवळे पान गळून जाते. त्याअर्थी जैनग्रंथात सांगितल्याप्रमाणे प्रत्येक पानात स्वतंत्र जीव आहे व त्यामुळे प्रत्येक पानाचा जीवनकाळही त्याच्या त्याच्या आयुष्यकर्मानुसार वेगवेगळा आहे. म्हणूनच प्रत्येक पाना-फुलाला वेगवेगळ्या प्रकारे कर्मसिद्धांत लागू होतो.

प्रत्येक झाडाचे जीवनचक्र वेगळे असते. प्रत्येक झाडाची पानगळती वेगळी असते. पद्धत वेगळी, वेळ

वेगळी, क्रम वेगळा व गळणाऱ्या पानांची संख्याही वेगळी. चिंच, आवळा इ. संयुक्त पाने असणाऱ्या झाडांची पाने संपूर्णपणे गळतात. झाड अगदी खराट्यासारखे होते. काहींची पानगळ वर्षभर चालू असते तर काहींची ऋतुनुसार. बांबूच्या झाडाला १०-१२ वर्षांतून एक फूल येते व फूल आले तर बांबूचे झाड हळूहळू नष्ट होते. सृष्टिरीक्षणाने आधारित असलेल्या जैनग्रंथात (दशवैकालिकात) अविनयी शिष्य, गुरुकडे अनेक वर्ष शिकूनही स्वतःच्या दुर्गुणांमुळे, स्वतःच्याच विनाशास कसा कारणीभूत होतो हे बांबूच्या उदाहरणाद्वारे सांगितले आहे.

प्रत्येक माणसाचा स्वभाव जसा भिन्न-भिन्न असतो, तसा प्रत्येक झाडाचा स्वभावही वेगवेगळा असतो. जातीनुसार प्रत्येक झाडाचे वेगळेपण तर असतेच पण त्यातही एका झाडाचे एक फूल, त्याच झाडाच्या दुसऱ्या फुलाप्रमाणे नसते. वंशसातत्य टिकवून ठेवण्यासाठी जशी माणसे धडपड करत असतात, वेगवेगळ्या प्रगत विज्ञानाचा आश्रय घेतात, तश्या वनस्पतीसुद्धा हे सर्व निसर्गतः करत असतात. केळीच्या झाडाच्या बाबतीत केळीचे घड एकदा का येऊन गेले की पुनःपुन्हा येत नाहीत. पण त्याच झाडाला 'आपली प्रजाती टिकवून ठेवणे' या स्वयंप्रेरणेने खालून नवीन कोंब फुटून आधीचे झाड हळूहळू संपते व नवीन वाढीस लागते.

वनस्पतिशास्त्राच्या दृष्टीने वेलींनीसुद्धा कोट्यावधी वर्षांत आपल्यात अनेक बदल केले आहेत. स्वसंरक्षणासाठी व स्वअस्तित्वासाठी अनेक बाह्यपरिवर्तने केली आहेत. जैन दृष्टीने या बदलांना पर्यायबदल असे म्हणता येईल.

'बटाटा, रताळे इ. वनस्पती जमिनीखाली का येतात ?' याची चर्चा वनस्पतिशास्त्राच्या जाणकारांशी केली असता, त्यांचे म्हणणे पुढीलप्रमाणे आले. ते म्हणतात की, बटाट्यासारख्या कंदाना आपले वंशसातत्य टिकवून ठेवण्यासाठी, त्यामध्ये असलेला अधिक अन्नाचा साठा कित्येक दिवस जमिनीखाली तसाच सुरक्षित ठेवता येतो. त्यांनी स्वतःसाठी तयार केलेले अन्न जमिनीखाली सुरक्षित राहते आणि म्हणूनच त्यांनी स्वतःसाठी बनविलेले अन्न आपण घेऊ नये, घेतल्यास ती चोरी होईल, अशाही एका वेगळ्या निरीक्षणशक्तीच्या आधारे भ. महावीरांनी त्या वनस्पतींकडे पाहिले असावे. दुसरा दृष्टिकोण असा असावा की, त्या काळी तापसवर्ग जंगलात रहात होता व कंदमुळे खाऊनच त्यांचा जीवननिर्वाह होत होता. अतिरिक्त वापरामुळेही त्या प्रजाती नष्ट न होण्याच्या दृष्टीने, त्यांच्या वापराचा निषेध केला असावा. म्हणजेच 'कंदमुळे अनंतकायिक वनस्पती आहेत म्हणून त्या खाऊ नयेत' या दृष्टिकोनाबरोबरच भ. महावीरांच्या अनेकांतवादी दृष्टिकोनामुळे, प्रत्येक गोष्टीकडे पाहण्याचे, विचार करण्याचे अनेक पैलू, विविध आयाम आपल्याला सहजी उपलब्ध झाले आहेत.

वनस्पतियोनिक वनस्पती अथवा अध्यारोह वनस्पती यांचा आताच्या परिप्रेक्ष्येत आपण वेगळा अर्थ लावू शकतो. जसे बांडगूळ - एखाद्या झाडाच्या मोठ्या खोडात खळगा तयार होऊन त्यात सूक्ष्म बीजे पडतात. जसे वडाच्या झाडात पिंपळाची आलेली फांदी अथवा पिंपळाच्या झाडात वडाची आलेली फांदी. अशा प्रकारे नैसर्गिकतः तयार झालेल्या अशा वनस्पतींना पाहूनच बागकाम शास्त्रज्ञांनी कलमी वनस्पती विकसित केल्या असाव्यात. सजातीय वनस्पती अथवा समान गुणधर्म असलेल्या वनस्पती घेऊन, जेनेटिक संयोग घडवून 'कलम'पद्धती निर्माण केली. परंतु दुष्परिणाम असा आहे की कलमी वनस्पती या परत फांदी लावून येत नाहीत. लावलेच तर झाड येईल, अफाट वेगाने वाढेलही पण पुन्हा फुले, फळे इ. काहीही येणार नाहीत.

आचारांग, सूत्रकृतांग, दशवैकालिक इ. जैनग्रंथात वनस्पतींचे अग्रबीज (जसे अग्रभागी येणाऱ्या कणसातून तयार होणारी धान्ये), मूलबीज (मूळ हेच ज्यांचे बीज अर्थात् सर्व प्रकारची कंदमुळे), पर्वबीज (पेरवाल्या वनस्पती जसे ऊस इ.), स्कंधबीज (फांदी लावून येणाऱ्या वनस्पती) अशाही प्रकारे वर्गीकरण केलेले दिसते. अग्रबीजात गहू, ज्वारी, बाजरी, तांदूळ, मका इ. सर्व प्रकारच्या धान्यांचा समावेश होतो. झाडावर पिकून, पूर्णवाढ होऊन, खाली पडणाऱ्या अवस्थेत त्यांची तोडणी होते. परिपक्व अवस्थेत तयार झालेले असल्यामुळे जैन व जैनतर, ह्यांचा मुख्य अन्न म्हणून स्वीकार करतात. तरीही 'प्रत्येकात जीव आहे', हे गृहीत तथ्य तसेच कायम राहते.

एकंदरीत काय, काहींचे बी लावून, काहींचे खोड लावून, काहींच्या फांद्या लावून तर काहींची मुळे लावून जैनशास्त्रात वर्णिल्याप्रमाणे आजही प्रत्यक्षात, अशा विविध मार्गांनी झाडांची प्रतिरूपे तयार केली जातात.

शेतीविषयक सद्यपरिस्थिती अशी आहे की 'बी.टी.बियाणे' हा बाजारात येणारा अतिशय भयंकर प्रकार आहे. ते बी आणून लावले तर एकदाच उगवते. त्यापासून तयार झालेले बी पुन्हा लावले तर झाडे येतील पण फुले, फळे येणार नाहीत. त्या बीमध्ये एवढेच जिन्स ठेवलेले असतात की त्यापासून एकदाच उत्पादन होऊ शकेल. अलीकडचा १०-१५ वर्षात याची झपाट्याने वाढ होत आहे. व्यापारी वर्गाची मक्तेदारी झाली आहे. पूर्वी शेतकरी स्वतःचे एक पोते, बी-बियाणे म्हणून, पुढील पेरणीसाठी जपून ठेवायचे, ते सर्व अकात संपुष्टात आले आहे. तुमचे तुम्हाला उत्पन्नच करता येणार नाही अशी परिस्थिती निर्माण झाली आहे. परावलंबन वाढत चालले आहे.

'गावरान बी' पुन्हा पेरणी केल्यानंतर उगवतं होते पण ते आकाराने लहान व प्रमाणही कमी होते. जसे आपण घरच्या घरी धने घेऊन, थोडे रगडून, जमिनीत टाकायचो तर कोथिंबीर सहजी येत होती. पण आता ते दिवस संपले. प्रगत शास्त्रज्ञ सर्व प्रयोग बियांवर करण्यात व्यस्त आहेत. प्रगत जात तयार करण्यासाठी, आकार वाढविण्यासाठी व प्रमाण वाढविण्यासाठी वेगवेगळ्या रसायनांचा व औषधांचा वापर चालू आहे. हा बदल झपाट्याने होत चालला आहे. प्रयोगाद्वारे अशी काही बी-बियाणे बनवितात की त्यांच्याकडून विकत घेण्याशिवाय पर्यायच उरत नाही.

नैसर्गिक पद्धतीचा लय होऊन कृत्रिमता आली आहे. टिशूकल्चरने तयार केलेली झाडेही प्रयोगशाळेत कृत्रिम पद्धतीने वाढवितात. एखादी बारीकशी पेशी लावून, तापमान नियंत्रित करून, संरक्षित अशा अवस्थेत त्यांना ठेवावे लागते. जशी आपली नाजूक मुले हवामानातील बदल सहन करू शकत नाहीत, अगदी तशीच ही कलम झाडे सुद्धा नाजूक असतात. ऊन, वारा, पाऊस त्यांना सहन होत नाही. ते अल्पायुषी असतात.

आता तिसरे सहस्रक उजाडले आहे. विज्ञानाचे वारे जोरजोरात सर्व क्षेत्रात वहात आहेत. नवनवीन प्रयोगांनी प्रवेश केला आहे. 'घरच्या घरी' ही संकल्पना भूतकाळात गेली आहे. आधुनिक संशोधनाचे दुष्परिणाम वनस्पतिसृष्टीवरही झाले आहेत. जेनेटिक इंजिनिअर नवनवीन संशोधन करत आहेत. परंतु शेतकरी समाजाचे शोषण होत चालले आहे. शेती ही संपूर्णतः निसर्गावर अवलंबून आहे. पाऊस वेळेवर आला नाही तर पाणी नाही. पाणी घालायचे म्हटले तर वीज नाही. कृत्रिमरीतीने तयार केलेल्या वनस्पती लवकर कीडतात म्हणून त्यांच्यासाठी जंतुनाशके विकत आणावी लागतात. खतांचा वापर करून जमिनी उजाड होत चालल्या आहेत. जर पाऊस वेळेवर आला नाही तर एक पीक वाया जाते. बाजारात जाऊन पुन्हा महागडी बियाणे आणावी लागतात. ठीक आहे, बी एकवेळ विकत आणू पण पाण्याचे काय ? पाण्याच्या अनेक योजना राबविल्या जात आहेत. पण एक थेंबही शेतकऱ्यांपर्यंत पोहचत नाही. अशा चक्रव्यूहात शेतकरी अडकले आहेत. पारंपरिक पद्धतीने शेती करणे सोडल्यामुळे शेतकरी आत्महत्येपर्यंत पोहोचले आहेत. त्यातून सुटकेचा मार्ग नाही. पिकविणाऱ्या अन्नदाता शेतकऱ्याची ही भीषण व दयनीय अवस्था आहे. वनस्पतींच्या संशोधनाचे झालेले हे दुष्परिणाम आहेत. खाद्य संस्कृतीत शिरलेले हे विज्ञान, उपयोग तर दूरच पण नुकसान मात्र अधिकाधिक होत आहे.

जैन दर्शनात बारा भावनांपैकी 'अशरणभावना' अनेक प्रकारे व्यक्त केली जाते. आधुनिक युगातील अशरणतेचा हा एक नवा प्रकार आला आहे. अन्नदात्या शेतकऱ्याला व अन्न खाणाऱ्या अशा दोघांनाही एकेकाळी ते सुखावह होत होते. त्यातील सर्व सत्ये कळून सुद्धा ते नाइलाजाने खावे लागत आहे. माझ्या हातात ते सुधारण्याचा काहीही उपाय नाही. ही ती नवी 'असहायता' किंवा 'अशरणता'.

(७) सूत्रकृतांगातील प्रत्याख्यानाचे स्वरूप

व्याख्यान : डॉ. नलिनी जोशी

शब्दांकन : डॉ. अनीता बोथरा

वैभवलक्ष्मीव्रत, संकष्टीव्रत, मंगळवार, शुक्रवार इ. अनेक व्रते जैनेतर समाजात चालू असतात व त्याचे पडसाद जैनसमाजावरही पडत असतात. समाजात एकमेकांचा एकमेकांवर प्रभाव पडत असतो, हे जरी सत्य असले

तरी, वास्तविकता अशी आहे की जैनेतर समाजाकडून जैन समाजाची आदानाची अर्थात् ग्रहणाची क्रिया जितक्या प्रमाणात आहे, तितक्या प्रमाणात जैनांकडून घेण्याची जैनेतरांची प्रतिक्रिया मात्र दिसून येत नाही. जैन समाजात जैनेतरव्रते करण्याचे प्रमाण दिवसेंदिवस तर वाढत चालले आहे पण त्याचबरोबर उपवास, प्रत्याख्यान, नियम इ. जैनव्रते करण्याची परंपराही चालू आहे. महत्त्वाचा प्रश्न असा आहे की, कोणतेही छोटे-मोठे व्रत-नियम-प्रत्याख्यान असो, ते आपण का करतो ?, कशासाठी करतो ? व कसे करतो ? याचे ज्ञान असणे महत्त्वाचे आहे.

‘संपूर्ण कर्मबंधापासून मुक्तता’, हे जैनधर्माचे मुख्य ध्येय आहे. म्हणूनच भूतकाळातील कर्मबंधापासून मुक्त होण्यासाठी ‘प्रतिक्रमण’ व भविष्यकाळात कर्मबंध होऊ नये म्हणून ‘प्रत्याख्यान’ हे दोन उपाय जैनधर्मात वारंवार निर्दिष्ट केले जातात. प्रत्याख्यानाचा हा रामबाण उपाय जैनधर्माशिवाय विश्वातील कोणत्याही धर्माने सांगितलेला नाही.

बौद्धधर्मात आत्मा ‘अनादि व नित्य’ मानतच नाहीत. आत्मा हा संस्कारमय व क्षणिक असा मानल्यामुळे, बौद्ध तत्त्वज्ञानाच्या चौकटीत प्राचीन दर्शन असूनही, ‘प्रकृति’ म्हणजे जड व ‘पुरुष’ म्हणजे चेतन अशी दोन तत्त्वे तर मानली आहेत परंतु पुरुष हा तटस्थ व साक्षी असून त्याच्या अध्यक्षतेखाली प्रकृतीच सदैव कार्यरत असते, असे सांख्यदर्शन मानते. परंतु जैनदर्शनात मात्र आत्माच कर्ता अर्थात् करणारा व भोक्ता अर्थात् भोगणारा आहे. म्हणून प्रत्याख्यानाचा संबंधही आत्म्याशीच आहे.

व्यवहारात आपण सहजी म्हणून जातो की - याचा मानसिक निश्चय अथवा मनोबल इतके जबरदस्त आहे की, आठ दिवस, पंधरा दिवस अथवा महिनाभर हा अन्नपाण्याचा त्याग करून सहजी राहू शकतो. परंतु भ. महावीरांनी ‘प्रत्याख्यानक्रिया’ अध्ययनाचा आरंभच असा केला आहे की, ‘आया अपच्चक्खाणी यावि भवति ।’ संसारी आत्मा हा अप्रत्याख्यानी आहे. म्हणजे प्रत्याख्यानाचा व आत्म्याचा संबंध स्पष्ट शब्दात जोडला आहे, मनाचा नाही. कारण जैनधर्माने आत्म्यात अनंतशक्ती मानली आहे. म्हणून कोणताही त्याग अथवा प्रत्याख्यान हे आत्मिक बळाच्या आधारे करावयाचे आहे, मनःशक्तीने नाही. मनःशक्तीपेक्षा आत्मिकशक्ती ही अनंतपटीने अधिक आहे. किंबहुना आत्म्याकडून मनाकडे व इंद्रियांकडे शक्तीचा स्रोत पुरविला जातो आणि म्हणूनच जैनधर्म हा “आत्मकेंद्री” आहे.

आज प्रचलित जैन समाजात ‘प्रत्याख्यान = आहाराची नियमावली’ अशी दृढ धारणा प्रस्थापित झाली आहे. सूत्रकृतांगाच्या प्रत्याख्यानक्रिया या अध्ययनात भ. महावीरांनी आहाराचेच प्रत्याख्यान सांगितले आहे का ? की प्रत्याख्यानक्रिया अजून वेगळ्या दृष्टीने प्रस्तुत केली आहे, त्याचा ऊहापोह आपण या लेखात करू.

जैनधर्म हा भावशुद्धीला महत्त्व देणारा आहे. त्यामुळे साहजिकच प्रत्याख्यान हे केवळ आहाराचेच नसून जीवाचे क्रोध, अभिमान, छल, कपट, तृष्णा इ. जे आंतरिक दोष अथवा दुर्गुण आहेत, त्यांच्या प्रत्याख्यानालाया अध्ययनात अधिक महत्त्व दिले आहे. आंतरिक दोषांची, दुर्गुणांची अथवा पापांची स्थाने ही अठरा आहेत. या अठरा पापस्थानांनी सदैव कर्मबंध होत असतो म्हणून प्रत्याख्यान, ‘अठरा पापस्थानां’चे करण्यास सांगितले आहे.

‘अठरा पापस्थान’ ही शब्दावली जैन तत्त्वज्ञानात अनेकदा येते. अर्थातच अठरा पापस्थानांना प्राचीन काळापासून अतिशय महत्त्व आहे. म्हणूनच या अध्ययनातही संपूर्ण अठरा नावे न देता ‘प्राणातिपातापासून ते मिथ्यादर्शनशल्यापर्यंत’ अशी शब्दावली उपयोजित केली आहे. सर्व पापस्थानांचा त्याग करताना एक गोष्ट मात्र समान आहे, ती अशी की - हिंसा असो, असत्य वचन असो की चोरी असो, कोणतीही पापक्रिया ही मनाने, वचनाने व कायेने स्वतः करू नये, दुसऱ्यांकडून करवून घेऊ नये व अनुमोदनही देऊ नये. अठरा पापस्थानांवर एकंदरीतच दृष्टी टाकली तर असे दिसून येते की, या मानवी स्वभावात दडलेल्या वेगवेगळ्या भावना आहेत, अंतःप्रवृत्ती ओह. प्रसंगानुसार त्या वेळोवेळी प्रकट होतात. गुणांबरोबर माणसात अवगुणही अनेक आहेत. जसे - सहज जाता जाता कोणाला दगड मारणे (हिंसा), खोटे बोलणे (झूठ), स्वतःच्या मालकीची वस्तू नसताना उचलणे (चोरी), दुराचार (कुशील), संग्रहवृत्ती (परिग्रह), क्रोध, अभिमान, कपट, लोभ, मनासारखे काही घडले की आनंदाची भावना

(रति), घडले नाही तर बेचैनी (अरति), सरळ सरळ तोंडावर बोलण्याचे धाडस नसेल तर त्यांच्या अपरोक्ष निंदा (परपरिवाद), एकमेकात भांडणे लावण्याची व चुगली करण्याची वृत्ती (कलह, पैशुन्य), व्यक्ती किंवा वस्तूच्या प्रति आसक्ती (राग) किंवा घृणा (द्वेष), खोटा दोषारोप (अभ्याख्यान), 'मी त्यातला नाहीच' असा भास निर्माण करण्यासाठी कपटपूर्वक खोटे बोलणे (मायामृषावाद) इ.इ. पण सर्वात घातक म्हणजे red signal च जणू असे पापस्थान म्हणजे 'मिथ्यादर्शनशल्य'. अर्थात् चुकीच्या धारणा मनात स्थिर करणे. या भ्रांत धारणा व्यावहारिक पातळीवर असोत की सामाजिक अथवा कौटुंबिक पातळीवर असोत की धार्मिक अथवा आध्यात्मिक पातळीवर असोत ; अनेक बाबतीत, विविध क्षेत्रात अशा चुकीच्या धारणा आपण पसरवत असतो. परंतु पसरवणाऱ्या व्यक्तीला आपण चुकीचे करत आहोत ही जाणीवच नसते. जाणीव करून दिली तर तो मान्य करत नाही. कोणत्याही चुकीच्या धारणा कशा वाढणार नाहीत याची खबरदारी प्रत्येकाने घेतली पाहिजे. इतकेच नव्हे तर इतरांचा धर्म अथवा दर्शन म्हणजे 'मिथ्यादर्शन' असा धर्माने लावलेला सांप्रदायिकी व अभिनिवेशी अर्थही आपण लावायला नको. चुकीच्या मान्यता स्वतः जोपासायच्या नाहीत व दुसऱ्यालाही खतपाणी घालून तो विषवृक्ष पसरवू द्यायचा नाही. वेळेवारीच सुसंवादाद्वारे त्या संपवून टाकायच्या.

एकंदरीतच ही अठरा पापस्थाने म्हणजे सर्व संसारी जीवांच्या स्वाभाविक प्रवृत्तीच आहेत. अंतर्मनात जे जे दृष्ट विचार आपण साठवित असतो ते अठरा पापस्थानांच्या रूपाने प्रकट होत असतात. म्हणूनच एकच व्यक्ती सभा-संमेलनात, कुटुंबात व एकांतात वेगवेगळी दिसते. खऱ्या उर्मी, अंतःप्रेरणा, दुर्गुण प्रसंगानुसार बाहेर पडत असतात. मनुष्याच्या व्यक्तिमत्त्वाचे दोन स्तर आपल्याला दिसतात.

- १) मन-वचन-कायेच्या सर्व वैशिष्ट्यांसह असलेले त्याचे बाह्य व्यक्तिमत्व,
- २) आश्रवचित्तानेयुक्त आंतरिक व्यक्तिमत्व.

ही अठरा पापस्थाने त्याच्या अंतर्मनात किती सौम्य, मध्यम व तीव्र आहेत यावरून त्याच्या आंतरिक व्यक्तिमत्त्वाची ओळख होते. अशा प्रकारचे मानसशास्त्रीय विश्लेषणही या अध्ययनात पापस्थानांच्या रूपाने आले आहे. आजच्या आधुनिक जगात personality development च्या आधारे आपले बाह्य व्यक्तिमत्व सुधारण्यास मदत होईल परंतु भ. महावीरांनी अठरा पापस्थानांच्या त्यागरूपाने आंतरिक व्यक्तिमत्व सुधारण्याची गुरुकिल्ली दिली आहे.

प्रत्येक संसारी आत्मा हा असत् अनुष्ठानात मग्न, चुकीच्या धारणांनी युक्त, पक्षपाती, अज्ञानात गुंग व बेसावध असतो. अशा परिस्थितीत आपल्या मनात शंका निर्माण होईल की अशा प्रकारचा आत्मा फक्त मनुष्याचाच असतो का ? तर त्याअर्थाने पापबंध फक्त मनुष्यच करतात. इतर अप्रगत जीव, ज्यांना मन नाही, भाषाज्ञान नाही, झोप नाही, स्वप्न नाही असे निगोदी जीव पापबंध करतच नसावेत ! त्याचे समाधान असे आहे की - सर्व संसारी जीव हे षट्जीवनिकायांच्या (अर्थात् पृथ्वी, पाणी, अग्नी, वायु, वनस्पती व त्रसजीव) संपर्कातच असतात. एकटा जीव सर्वांपासून दूर, वेगळा राहूच शकत नाही. आहारासाठी एकमेकांवर अवलंबून असतात. कोणत्याही जीवाचे संसारात राहणे हेच अव्रताचे म्हणजे अप्रत्याख्यानाचे कारण आहे व तोच बंधाचा हेतू आहे. म्हणून कोणतीही जाणिव नसलेला निगोदी जीव असो किंवा पंचेंद्रिय संज्ञी (मनसहित) मनुष्य असो, सर्वांना पापबंध होतोच. अप्रत्याख्यानाचे होणाऱ्या पापबंधापासून दूर राहण्याचा उपाय म्हणजे 'प्रत्याख्यान'. इतर योनीपेक्षा विचारशील मानवी योनीतप्रत्याख्याची सर्वाधिक शक्यता व क्षमताही आहे व म्हणूनच 'अठरा पापस्थानांपासून विरत राहण्याचा संकल्प' येथे सांगितला आहे.

प्रत्यक्ष आचरणात प्रत्याख्यानाचे पालन करण्यासाठी साधूंच्या दृष्टीने अत्यंत प्रभावी उपाय म्हणजे 'आत्मतुला' अर्थात् 'आत्मोपम्यभाव' सांगितला आहे. आपल्या आत्म्यासमान दुसऱ्याचा आत्मा आहे, ही जाणीव ठेवून हिंसा, शासन, दंड, कष्ट, परिताप कोणासही करू नका, देऊ नका. म्हणून महाव्रत, समिति, गुप्ति इ.च्या रूपाने तसेच छोटे-मोठे नियम घेऊन, शपथ व शुभ संकल्पांच्या रूपाने प्रत्याख्यानाशी जोडला आहे.

पण प्रत्यक्ष जैन आचारात मात्र प्रत्याख्यान हे प्रायः आहाराशीच संबंधित असे दिसून येते. परंतु आहार हे त्याचे

फक्त आंशिक अंश आहे. पापस्थानाचे जे मूळ कषाय ते दूर करणे सर्वात महत्त्वाचे आहे. कारण चित्तात शिरलेले कषाय अथवा वैरभाव दीर्घकाळ व खोलवर राहतात. त्यांना सहजी दूर करता येत नाही. जसे 'वाळा' नावाच्या गवताची सुगंधित मुळे एकमेकांत गुंतल्यामुळे, सहजासहजी सर्व उपटली जात नाहीत. उपटताना सूक्ष्म मूळ जरी राहिले तरी पुन्हा नवनिर्मिती होते. तसे कषाय असतात. निघून गेल्यावरही सूक्ष्मरूपानेजरी राहिले तरी निमित्त मिळताच वाढीस लागतात. म्हणून कषायांवर नियंत्रण ठेवता आलेच पाहिजे. आपल्या चित्तवृत्ती अशा पातळीवर असाव्यात की काही असो किंवा नसो, आपल्या आत्म्याचा आलेख हा एकसारखा दिसला पाहिजे. बाह्य वस्तूंची व्यवस्थापन पद्धती तर आपण शिकतच असतो पण भ. महावीरांनी अठरा पापस्थानांच्या त्यागाच्या रूपाने आंतरिक चित्तवृत्तींची व्यवस्थापन (management) पद्धती सांगितली आहे.

परिस्थिती, काळ, वेळ, संधी, दृष्टी इ. पाहून म्हणजेच पारिभाषिक भाषेत द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुसार कोणत्या वेळी कशाला महत्त्व द्यायचे, ते तुम्हीच ठरवा. संकल्प कशात करायचा व कशात नाही ते relatively ठरेल. 'हवा' हा जसा 'दुराग्रह' आहे तसा 'नको' हाही 'हटाग्रह'च आहे. नियमातले गुंतवणेपण व त्याने होणारे अनर्थही टाळू या. जीवन प्रसंगा-प्रसंगाने साधेपणाने जगू या.

आजच्या व्यवहारात, त्या त्या अवस्थेत, त्या त्या भूमिकेत, अर्थात् मुलांविषयी असो, कुटुंबाविषयी असो, स्वतःविषयी असा अथवा धार्मिकतेविषयी असो, नेमके कुठे थांबले पाहिजे - याचे भान, याची जाणीव म्हणजे प्रत्याख्यान. जसा करियरचा उत्कर्षबिंदू असतो, तसा थांबण्याचाही उत्कर्षबिंदू असावा आणि म्हणूनच संलेखना अर्थात् समाधिमरणाच्या प्रसंगीही प्रत्याख्यान धारण करताना सर्वप्रथम अठरा पापस्थानांचाच त्याग करण्याचा निर्देश आहे. कारण अठरा पापस्थानांच्या त्यागानेच नैतिक व आध्यात्मिक उन्नती होणार आहे, जी केवळ आहारत्यागाने होणार नाही.

आपण सर्व जीवांच्या संपर्कात राहतो व जगतो. त्यामुळे सर्व जीव अर्थात् षड्जीवनिकाय, हे अप्रत्याख्यानी जीवाला जरी संसारभ्रमणाचे हेतू ठरत असतील तरी प्रत्याख्यानी जीवाला तेच षड्जीवनिकाय मोक्षाचे कारणही ठरतात. सूत्रकृतांगसूत्राच्या टीकाकारांनी अशा भक्कम आशावादाने प्रत्याख्यानासंबंधीच्या विचारांचा उपसंहार केला आहे.

(८) लेप गृहपति : एक आदर्श श्रावक

संगीता बोथरा

सूत्रकृतांग या द्वितीय आगमग्रंथातील द्वितीय श्रुतस्कंधातील 'नालंदीय' नामक ७ व्या अध्यायात 'लेप' श्रावकाचे वर्णन आले आहे. या अध्ययनात गौतम गणधर आणि पार्श्वपत्नीय पेढालपुत्र उदक यांच्यातील सुप्रत्याख्यान आणि दुष्प्रत्याख्यान यांच्या संदर्भातील चर्चासत्राचे विस्तारपूर्वक वर्णन आले आहे. हे चर्चासत्र 'लेप' गृहस्थाच्या 'शेषद्रव्या' नामक उदकशालेत झाले. सूत्रकृतांगाच्या दोन्हीही श्रुतस्कंधात एकमात्र 'लेप' श्रावकाचेच वर्णन आढळते.

'लेप' हा आदर्श श्रमणोपासक होता. राजगृहाच्या 'नालंदा' नामक उपनगरातील समृद्धशाली, तेजस्वी, विख्यात असा हा 'लेप' श्रावक. १२ व्रतांचा धारक आणि त्यांचे पालन करणारा ! आजदेखील आपल्यासारख्या श्रावक-श्राविकांचा आदर्श आहे.

'लेप' श्रावकाकडे विपुल प्रमाणात धन, धान्य, संपत्ती तर होतीच शिवाय विशाल आणि बहुसंख्य प्रमाणात भवन, शयन, आसन, यान, वाहन तसेच दास, दासी, गायी, म्हशी आदि होते. अनेक लोक मिळून देखील त्याचा पराभव करू शकत नव्हते. तो धनोपार्जनास उपयुक्त अशा सर्व उपायांचा ज्ञाता आणि त्यांचा प्रयोग करण्यात कुशल होता.

यावरून लक्षात येते की, 'लेप' श्रावक गर्भश्रीमंत, व्यवहारकुशल, पराक्रमी, रोजगार उपलब्ध करून देणारा,

चतुर नागरिक होता. याचबरोबर तो जिज्ञासू आणि ज्ञानी देखील होता. त्याला जीव, अजीव या तत्वांचे परिपूर्ण ज्ञान होते. वस्तुस्वरूपाचे यथार्थ ज्ञान होते. निर्ग्रंथांच्या प्रती त्याची अतूट श्रद्धा, विश्वास होता. धर्म त्याच्या हाड्यासात भिनलेला होता. तो समोरच्या प्रतिवादीस देखील निर्ग्रंथ धर्म सत्य आहे हे व्यवस्थितरित्या पटवून देत होता आणि त्यात स्थिर करीत होता. वीतराग भगवंतांच्या विषयी त्याची श्रद्धा त्याच्या धर्मदलालीतून आणि जिज्ञासूवृत्तीतून दिसून येते.

त्याचे यश सर्वत्र पसरलेले होते. त्याचे हृदय स्फटिकासमान निर्मल होते. राजाच्या अंतःपुरात देखील त्याला प्रतिबंध नव्हता. यावरून तो किती शुद्ध चारित्र्याचा होता हे प्रतिबिंबित होते.

सर्व सुखसोयींनी युक्त असलेली त्याची 'शेषद्रव्या' नावाची उदकशाला, याचकांसाठी सदैव उघडे असलेले त्याच्या घराचे द्वार, निर्ग्रंथ श्रमणांसाठी केलेली शुद्ध आणि एषणीय अशन, पान, खाद्य आणि स्वादिमची व्यवस्था, 'लेप' श्रावकाचा दानी स्वभाव, अनुकंपाभाव, दयावृत्ती, कर्तव्यपालनता दर्शवीत आहे.

'लेप' श्रावक फक्त व्यवहारात किंवा कर्तव्यपालनात मग्न होता असे नव्हे तर तो आत्मोन्नतीत देखील रममाण होता. चतुर्दशी, अष्टमी, पौर्णिमा यासारख्या तिथींना तो परिपूर्ण पौषधव्रताचे पालन करी. इच्छांचा निरोध करून उपवास आदि तपाने तत्प होवून आत्म्यास निर्मल करीत होता. निरासक्त भावात युक्त होवून आनंदाने जीवनयापन करीत होता.

उपसंहार : अशा या आदर्श श्रावकापासून प्रत्येकाने पुढील प्रेरणा घ्याव्यात.

१) मी माझ्याकडील धनसंपत्तीत अर्थात् परिग्रहात न अडकता निरासक्त भावनेने कर्तव्यपालनात तत्पर असावे. २) लेप जर अत्यंत मोठा व्यापार कुशलतेने सांभाळून, पौषधादीव्रतांचे पालन करू शकतो तर मला देखील वेळ मिळत नाही, कोणाची साथ नाही अशी कारणे न देता यथाशक्य १२ व्रतांचे पालन करण्यास प्रेरित झाले पाहिजे. ३) आज देखील वर्तमानात बाबा आमटे, नारायणमूर्ती, अझिज प्रेमजी सारखी माणसे 'लेप' सारखेच आदर्श श्रावक आहेत, नागरिक आहेत. मी देखील जैन दर्शन जास्तीत जास्त लोकांपर्यंत पोहचविण्यास प्रयत्नशील राहीन. १२ व्रतांचे पालन करून पर्यावरण समतोल ठेवण्यास सहकार्य करेन.

उत्तराध्ययन, अंतगड, विपाकसूत्र यासारख्या आगमग्रंथांचा थोडाफार परिचय होता पण सूत्रकृतांगाने आमचा वैचारिक क्षेत्राचा पट उलगडला. बुद्धी विशाल झाली. समाजाचे भान आले. वाणीविवेक समजला. सर्व भारतीय दर्शनाचा मूल स्रोत सूत्रकृतांग आहे हे समजले. नवीन मुद्दे, नवीन विषय, वादसंवाद, प्रश्नोत्तर, जुन्या शब्दांचे नवीन अर्थ दिसले. दृष्टी विस्तारली. एकांगीपणाचे तोटे कळले.

(९) सूत्रकृतांग में प्रतिबिम्बित सामाजिक अंश

कुमुदिनी भंडारी

जब हम किसी भी ग्रन्थ का, साहित्य का अध्ययन करते हैं, तब अनायास ही हमें उसमें अनेक आयामों का दर्शन होता है। सैद्धान्तिक, तात्त्विक, वर्णनशैली, कथासाहित्य, छंदोबद्धता, तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति इत्यादि अनेक पहलूओं पर प्रकाश पड़ता है। सूत्रकृतांग (२) भी इसे अपवाद नहीं है। इसमें भी अनेक आयामों का दर्शन होता है। मैंने सामाजिक परिस्थिति का आयाम चुना है। तत्कालीन समाज इसमें कैसे झलकता है इसका शोध लेने का प्रयत्न किया है।

सूत्रकृतांग (२) के प्रथम पुण्डरिक अध्ययन में पुष्करिणी का अत्यन्त मनमोहक वर्णन है। यह वर्णन तत्कालीन समाज के सौंदर्यदृष्टि का दिग्दर्शन कराता है। जगह-जगह सुन्दर पुष्करिणियाँ होती थी। कमल के फूल का सामाजिक जीवन पर बड़ा ही प्रभाव था। पानी में रह कर भी अलिप्त रहने के उसके स्वभाव की उपमा, साधुओं को दी जाती थी।

‘कमल’ हासिल करने आये हुए सभी दिशाओं के पुरुष तत्कालीन, तज्जीवतच्छरीरवाद, पंचमहाभौतिकवाद, ईश्वरकारणिकवाद, नियतिवाद, श्रमण परम्परा के प्रतीक हैं। तत्कालीन समाज में ऐसी भिन्न-भिन्न परम्परा, विचारधाराएँ थी। उनकी एकदूसरे के साथ चर्चाएँ चलती थी, वाद-प्रतिवाद होता था, आरोप-प्रत्यारोप, उसका समाधान होता रहता था। हालाँकि उसको खण्डन-मण्डन का कठोर तार्किक स्वरूप नहीं था।

हर एक परम्परा की मान्यता और आचरण अलग-अलग था। जैन श्रमण का आचरण बहुत कठोर था। वे आजीवन निरन्तर ब्रह्मचर्य पालन करते थे। भिक्षा माँगकर निर्दोष आहार ग्रहण करते थे। वे अत्यन्त संयमी, यतनावान होते थे। पंचयाम-धर्म का चलन था। साथ ही साथ पार्श्वपत्य जैसे पार्श्वपरम्परा के श्रमणों का चातुर्याम धर्म भी, कहीं कहीं मौजूद था। चातुर्याम से पंचयाम में परावर्तित होने की प्रक्रिया चल रही थी। अन्य परम्परा के साधुओं का, मुनियों का, यतियों का आचरण इतना कठोर नहीं था। वे आयुर्वेदिक दवाएँ, मैथुन, परिग्रह, प्राणातिपात से निवृत्त नहीं थे। जलस्नान, अग्निताप, कन्दमूलभक्षण करते थे। दण्ड-कमण्डलु धारण करते थे। तापस गाँव में, गाँव के बाहर, जंगलों में रहते थे। कई भिक्षु मांसाहार भी करते थे। कई जैन तथा अजैन साधु नग्न रहते थे। कई तापस गुप्तचर का काम भी करते थे। समाज में कई लोग इन सबका उपहास भी करते थे लेकिन अधिक प्रमाण में गृहस्थ इनको भिक्षा देते थे, आदरसम्मान करते थे।

समाज में ‘गोत्र’ संकल्पना का बड़ा ही प्रभाव था। आर्य-अनार्य, उच्च गोत्र-नीच गोत्र, लोग मानते थे। इनकी भाषाएँ भी अलग-अलग थी। समाज में संयुक्त कुटुम्बपद्धति का प्रचलन था। कुटुम्ब में कुटुम्बप्रमुख की सत्ता चलती थी। समाज में दास-दासी जैसी कठोर व्यवस्था भी थी। खाने-रहने के बदले, ये आजीवन सेवा करके गुजारा करते थे। इन्हें किसी भी तरह का स्वातन्त्र्य नहीं था। इनका उल्लेख हमेशा पशुओं के साथ आता है। इनको पशुओं से भी गया-गुजरा समझा जाता था। समाज में चार वर्णों का प्रचलन था। ब्राह्मणों के लिए बड़े-बड़े भोजों का आयोजन होता था। वणिक व्यापार करते थे।

समाज में मन्त्र-तन्त्र, गण्डा-दोरा करनेवाले लोगों की भरमार थी। वे लोगों की असहायता का फायदा लेकर उन्हें लूटते थे। नागकुमार, यक्ष, भूत इत्यादि का पूजन होता था। उनके लिए बलि चढाया जाता था। देवोंके सामने पशुबलि देने का रिवाज था। समाज में अन्धश्रद्धा, पूजाअर्चा, कर्मकाण्ड की भरमार थी।

अलग-अलग ४० प्रकार के विद्याओं का अध्ययन लोग करते थे। इन विद्याओं का निर्देश इस ग्रन्थ में है। लोग अनेक प्रकार के व्यवसाय करते थे, जैसे खेती, मच्छिमारी, भेड़े-बकरी चराना, गोपालन इत्यादि। मसूर, चावल, तिल, उडद, मूँग, वाल इत्यादि तरह-तरह के धान खेती में उगाये जाते थे। मुख्य फसल-अन्तर फसल ऐसी व्यवस्था होती थी। तिल का तेल निकाला जाता था। खेती के लिए ऊँट, गाय, बकरी, गधे पाले जाते थे। उनको रखने के लिए बड़ी-बड़ी शालाएँ बनायी जाती थी। लोगों के घर, चारों ओर से खुले और बड़े-बड़े रहते थे। अतिथि के लिए घर के दरवाजे हमेशा खुले रखे जाते थे।

मनोरंजन के लिए प्राणियों की शिकार होती थी। लोग बड़े पैमाने में मांसाहारी थे।

कई लोग उदार कामभोग भोगते थे। नाच-गाना, गहने पहनना, चन्दन जैसे सुगन्धी लेप लगाना, मालाएँ पहनना, मणि-सुवर्ण धारण करना - उनकी विलासी रहनसहन तथा समृद्धि का दर्शन कराती थी। ‘लेप’ श्रावक के वर्णन में हमें तत्कालीन समृद्धि का दर्शन होता है। विशाल-बहुसंख्य भवन, चांदी-सोना, गाय-भैंस, नोकर-चाकर इन सभी को ‘धनस्वरूप’ माना जाता था।

लोग घूमने के लिए गाड़ी, रथ, घोडागाड़ी, पालकी आदि वाहनों का वापर करते थे। व्यापार के लिए विदेश भी जाते थे। यात्रियों के लिए रास्ते में ‘उदकशाला’ (प्याऊ) तथा रहने के लिए ‘धर्मशाला’ की व्यवस्था होती थी। इस उदकशाला के वर्णन से हमें तत्कालीन वास्तुकला का उत्कर्ष नजर आता है।

पुण्डरिक अध्ययन में ‘राजा’ का वर्णन है। उससे तत्कालीन राज्यव्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। राजा अत्यन्त कर्तव्यप्रिय होते थे। शूरवीरता उनके अंग में कूटकूट के भरी हुई थी। राजा और धर्म का सम्बन्ध बहुत गहरा

था । राजा धार्मिक हुआ करते थे । राजाश्रय पाने से धर्मप्रसार आसान होता है इसलिए हर कोई राजा को प्रभावित करके अपने-अपने धर्म की प्रभावना करने का प्रयत्न करता था ।

इसके विपरीत 'क्रियास्थान' अध्ययन में विविध सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों का चित्रण है । ऐसे सामाजिक गुनाह तब भी थे, आज भी है । सिर्फ स्वरूप का बदलाव आया है । ये तो एक-ही सिक्के के दो पहलू हैं ।

(१०) आचारश्रुत अध्ययन : एक चिंतन

सुमतिलाल भंडारी

सूत्रकृतांग (२) मधील 'आचारश्रुत' अध्ययन हे अनेक दृष्टीने वैशिष्ट्यपूर्ण आहे. या अध्ययनात साधूंच्या आचाराचे अथवा दुराचाराचे व्यावहारिक वर्णन नाही, तर सैद्धांतिक अनाचाराचे वर्णन आहे. दृष्टी व वचनाचा अनाचार म्हणजेच सैद्धांतिक अनाचार म्हणजेच एकान्तवाद. या अध्ययनात एकान्तवादाचे खंडन करून, त्याचा अव्यवहारीपणा दाखविला आहे. त्याचबरोबर अनेकान्तवादाचा व्यवहारीपणा सांगून त्याचाच वापर साधूंनी करावा असा परामर्श दिला आहे. वाणीसंयमाचे महत्त्व सांगून स्याद्वाद हाच वाणीचा आचार आहे, असे सांगितले आहे. अनेकान्तवाद व वाणीसंयम या गोष्टी साधूंकरिता त्याच्या दैनंदिन व्यवहारात, आचारात व जनसंपर्कात कशा महत्त्वपूर्ण आहेत हे सांगितले आहे. तसेच या गोष्टी केवळ धर्मात शिकावयाची तत्त्वे नसून, जीवन जगावयाची तत्त्वे आहेत, हे पटवून दिले आहे. त्यामुळे हे अध्ययन साधूंकरिता तर आहेच आहे, पण हे जनसामान्यांकरिताही आहे, हे जाणवते व हेच या अध्ययनाचे फलित आहे.

अनेकान्ताविषयी सांगताना महावीरांनी म्हटले आहे की, संपूर्ण सत्य जाणून घ्यायचे असेल तर कोणत्याही गोष्टीचा विचार एकाच दृष्टिकोणातून करून चालणार नाही. त्या गोष्टीला अनेक बाजू असू शकतात. त्या द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव यांच्याशी निगडित असतात. त्यामुळे कोणतीही गोष्ट एकांगी नित्य अथवा एकांगी अनित्य असूच शकत नाही. याच दृष्टीने सांख्यांचे 'एकान्त-नित्य' तत्त्वज्ञान अथवा बौद्धांची 'एकान्त-दुःखमय' संकल्पना या अयोग्य वाटतात. महावीरांनी या दोन्ही संकल्पनांचा निषेध केला आहे व म्हटले आहे की अनेकान्तवादानुसार कोणत्याही व्यवहाराला सर्व पर्याय असतात. म्हणून तर काही दार्शनिक जरी कर्मसिद्धांत, पूर्वजन्म-पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरक आदि संकल्पनांना मानीत नसले, तरी जैन धर्म यांना मानतो. त्यांचे अस्तित्व स्वीकारतो.

यावरून एक गोष्ट निश्चित आहे की, प्रत्येक वेळी आपलेच म्हणणे बरोबर आहे असा दुराग्रह बाळगता कामा नये. दुसऱ्याचेही म्हणणे सयुक्तिक असू शकते याचा विचार करावयास हवा. अनेकान्तवादाच्या या वैचारिक उदारतेचा उपयोग, गैरसमजुती, दूषित दुराग्रह, अहंभाव, स्वार्थी विचार, विवेकशून्यता अशा कितीतरी गोष्टी दूर करावयास होतो. या वैचारिक उदारतेचा स्त्रियांकरिता उपयोग करणाऱ्यांमध्ये महावीर अग्रणी होते. त्यांनी स्त्रियांना पुरुषांच्या बरोबरीने समानतेची वागणूक दिली. त्यांना संघात दीक्षा दिली. त्यांना संघप्रमुख करून त्यांच्यावर जबाबदाऱ्या टाकल्या.

व्यवहारातही अनेकान्तवाद अनेक ठिकाणी वापरलेला दिसतो. स्त्रियांकरिता आरक्षण, विधवा पुनर्विवाह, संसद व विरोधी पक्ष, भारताची सर्वकष राज्यघटना ही काही त्याची उदाहरणे आहेत. मात्र त्याचबरोबर संप, जाळपोळ, मारामान्या, दगडफेक आदि एकान्तवादाचा आश्रय घेणाऱ्या घटना, अनेकान्तवादाचा पुरस्कार करणाऱ्यांघी शोकांतिका दर्शवितात.

अर्थात् अनेकान्तवादालाही मर्यादा आहेत. धार्मिक बाबतीत जिनांनी सांगितलेली षड्द्रव्ये, नऊ तत्त्वे, मोक्ष, सिद्धशिला आदि संकल्पनांवर श्रद्धा ठेवावयासच हवी. तसेच व्यवहारी जगतातील खून, बलात्कार, भ्रष्टाचार, देशद्रोह या गोष्टी निंदनीयच आहेत. या दोन्ही प्रकारात अनेकान्तवाद वापरताच येत नाही. किंबहुना, महावीरांनी त्या काळी वैदिक कर्मकांडाला केलेला विरोध हा अनेकान्तवादाची मर्यादा ओळखूनच केला असावा, असाही विचार

मनात येतो.

वर उल्लेखिलेला अनेकान्तवाद कोणी व कसा आचरणात आणायचा हा आजच्या काळातील मोठा यक्षप्रश्न आहे. दोन व्यक्ती अथवा दोन पक्ष समोरासमोर आल्यावर, वैचारिक उदारता प्रथम कोणी दाखवायची व कोण कोणाचे ऐकून घेणार आहे हा प्रश्नच आहे. उलटपक्षी जो कोणी प्रथम नमते घेईल, त्याला भित्रा, बुळा असेही संबोधले जाईल. त्यामुळे अनेकान्तवाद सामान्य व्यक्तीच्या आटोक्याबाहेरचा आहे असे वाटते. याउलट ज्यांच्यामध्ये तात्त्विक विचारांची बैठक आहे, आत्मौपम्य बुद्धी आहे व सहनशीलता आहे, अशी विवेकी मंडळीच त्याचे आचरण करू शकतील, त्याचा विचार करू शकतील असेही वाटू लागते.

वाणीसंयमाचे महत्त्व तर महावीरांनी अनेक उपदेशातून पटवून दिले आहे. जिभेवर ताबा असेल तरच साधूचे अस्तित्व टिकून राहते. त्याची जनमानसातील प्रतिमा उंचावते. नाहीतर ती रसातळाला जावयास वेळ लागत नाही. त्याचबरोबर वाणीचा संबंध हिंसेशी असल्याने पापमय प्रवृत्तींना उत्तेजन देणाऱ्या भाषेचा वापर टाळावा लागतो. तसेच निश्चयात्मक, हेकेखोर, आक्रमक, एकांगी बोलणे टाळावे लागते. हे जरी सगळे खरे असले तरी समाजातील वाईट प्रवृत्तींना आळा घालण्यासाठी, साधूंना, वेळप्रसंगी प्रवचनातून दोन खडे बोलही सुनवावे लागतात, नव्हे ते त्यांचे कर्तव्य ठरते, हे आपण पाहतो.

सर्वसामान्यांच्या बाबतीतही वाणीसंयमाचे महत्त्व पदोपदी जाणवते. वर्तमानपत्रातून येणारी उच्चपदस्थांची बेजबाबदार वक्तव्ये देशाची प्रतिमा मलिन करताना दिसतात. तसेच अनेक तथाकथित लोकमान्य संतांचे अशोभनीय आचरण शरमेने मान खाली घालावयास लावते.

थोडक्यात, साधूंची समाजाकडे पाहण्याची दृष्टी कशी असावी, त्यांचा वाणीसंयम कसा महत्त्वाचा आहे, त्याचबरोबर त्यांची विधाने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव लक्षात ठेवून अनेकान्तवादाने केलेली असावीत, त्याला निश्चयनयाबरोबर व्यवहारनयाचीही जोड असावी या गोष्टी या अध्ययनात अधोरेखित केलेल्या दिसतात. तसेच हा उपदेश जनसामान्यांकरिताही तेवढाच महत्त्वपूर्ण आहे, याचीही प्रकर्षाने जाणीव होते. अर्थात् सर्वच गोष्टींना मर्यादा असतात, हेही विसरून चालणार नाही.

तरीसुद्धा 'अनेकान्तवाद' हे महावीरांचे जैन धर्माला दिलेले मोठे योगदान ठरते, यात शंकाच नाही.

(११) सूत्रकृतांगाचे दोन श्रुतस्कंध : तौलनिक विचार

रेखा छाजेड

प्रस्तावना :

भ. महावीरांच्या पूर्वीचे तसेच भ. महावीरकालीन भारतातील सर्व दर्शनांचा विचार जर कोणत्या एकाच ग्रंथातून जाणून घ्यायचा असेल तर तो 'सूत्रकृतांगा'तून घेता येईल. जैन परंपरेने मांडलेला विचार आणि आचाराचा सुंदर समन्वय येथे आहे. हा वैचारिक ग्रंथ आहे. याची भाषा प्राकृत असून सर्वजनहितकारी आहे. अर्धमागधी भोष्पा हा प्राचीन नमुना आहे. अंगसूत्रात याचे दुसरे स्थान आहे.

तुलना :

प्रथम श्रुतस्कंधाचा बराचसा भाग पद्यमय आहे. यामध्ये १६ अध्ययने असून काहींना उद्देशक आहेत. १६ पैकी ७ अध्ययनांची सुरवात प्रश्नोत्तराने होते. फक्त १६ वे अध्ययन गद्यमय आहे. तर दुसराश्रुतस्कंध मुख्यतः गद्यमय आहे. यात ७ अध्ययने असून, उद्देशक नाहीत. दोन्ही श्रुतस्कंधात तत्त्वज्ञानाला आचारधर्माची सुंदर जोड दिलेली आहे. स्वमत-परमताच्या रूपात जैन आणि जैनेतर (दार्शनिक) अशा दोन्ही परंपरांच्या मतांचा उल्लेख आहे. दोन्हीत त्या काळच्या दर्शनांची चर्चा ; जैनांची जीव-अजीव इ. ९ तत्त्वे ; तसेच अनेक परमतांचे विवेचन असून स्वमताचे माहात्म्य वर्णन केले आहे. जीवन व्यवहाराचा उच्च आदर्श सांगितला आहे.

श्रुतस्कंध १ :

१) समय - अहिंसा सिद्धांत २) वैतालीय - वैराग्याचा उपदेश ३) उपसर्ग - संयमी जीवनात येणाऱ्या विघ्नांचे वर्णन ४) स्त्री-परिज्ञा - ब्रह्मचर्यघातक विघ्नांचे वर्णन ५) नरक - नरकातील दुःखांचे वर्णन ६) वीरस्तुती - महावीरांची स्तुती वर्णन ७) कुशील - चारित्रहीन व्यक्तीचे वर्णन ८) वीर्य - शुभाशुभ प्रयत्नांचे वर्णन ९) धर्म - धर्माचे वर्णन १०) समाधि - धर्मातील स्थिरतेचे वर्णन ११) मार्ग - संसार-बंधनातून मुक्त होण्याचा मार्ग १२) समवसरण - क्रिया-अक्रिया-विनय-अज्ञानाचे वर्णन १३) याथातथ्य - मानवी मनाचे सुंदर वर्णन १४) ग्रंथ - ज्ञानप्राप्तीच्या मार्गाचे वर्णन १५) आदानीय - महावीरांच्या उपदेशाचे सार १६) गाथा - गद्यमय असून भिक्षूचे वर्णन.

अशा प्रकारे प्रत्येक अध्ययनाचे शीर्षक जरी वेगळे असले तरी त्यात विचारांची साखळी गुंफली आहे. विषय नजरेतून सुटू नयेत म्हणून विषयांची पुनरावृत्ती फार आहे. अनेकदा व्यापक विचार मांडले आहेत. यात एक प्रकारे 'मानसशास्त्र' ही आहे. कसे वागा, कसे वागू नका याचा भरपूर विचार मांडला आहे. उत्तम श्रावकाचे उदाहरणात्मक वर्णन नाही. पण त्याच्या अंगी कोणते गुण असावेत याचे विस्तृत वर्णन आहे.

श्रुतस्कंध २ :

प्रत्येक अध्ययन वेगळे पण पूर्ण स्वतंत्र आहे. विषयांची विविधता अनेक पैलूतून मांडली आहे. सर्व विषय अर्थपूर्ण, परिणामकारक आहेत. सर्व अध्ययनात काळाच्या पुढचे विवेचन आहे.

१) पौण्डरिक : गद्यमय-विभिन्न संप्रदायांच्या भिक्षूंचे वर्णन. सदाचारी, सुसंयमी पुरुषच सफल होतो असे प्रतिपादन.

२) क्रियास्थान : दरक्षणी केलेल्या वर्तनाला जैन दर्शनात किती महत्त्व आहे ते १२ क्रियांतून व १८ पापस्थानांतून दिसते.

३) आहारपरिज्ञा : वाचकाचा प्रथमदर्शनी अपेक्षाभंग होतो. कारण जैनआचारात अवाजवी महत्त्वाचा असलेला 'आहाराचा त्याग' कोठेही सांगितला नाही. प्रत्याख्यान शब्दच नाही. संथारा नाही. आध्यात्मिक उपदेश देणे नाही. जीव एकमेकांवर उपकार करतात असेही नाही. 'जीवो जीवस्य जीवनम्' हे ब्रीदवाक्य. त्यांना विदित असलेले जे जे जीवशास्त्रीय आणि वनस्पतिशास्त्रीय ज्ञान त्यावेळी होते ते आपल्यापर्यंत पोहोचवले. 'पहा' व 'जाणा' हेच सांगितले.

४) प्रत्याख्यानक्रिया : त्यागाचे, नियमांचे स्वरूप व वर्णन. हा पूर्ण अध्याय असला तरी त्याचे परिशिष्ट पुढे 'नालंदा' मधूनही केले आहे. अनुकूलता असते त्यावेळी संयमाचे महत्त्व. अंतःप्रेरणेला लगाम घाला. १८ पापस्थानांचे प्रत्याख्यान करा.

५) आचारश्रुत : खास सांगितलेला जो साधुविषयक रूढाचार आहे, त्याच्याबद्दल एकही वाक्य नाही. जसे - पंचमहाव्रत, गुप्ती, समिती, दशविधधर्म इ. हा अध्याय वाक्समितीवर आधारित आहे.

६) आर्द्रकीय : महावीर किती व्यवहारवादी होते त्याचा हा अध्याय द्योतक आहे. तो प्रश्नोत्तरातून उलगडत जातो. शंका व त्याला दिलेले उत्तर यात आहे. शंका-समाधान जरी असले तरी काही ठिकाणी दिलेली उत्तरे पटत नाहीत.

(१२) सूत्रकृतांगाच्या द्वितीय श्रुतस्कंधाचे सार

शकुंतला चोरडिया

सूत्रकृतांगाच्या अथांग ज्ञानसागरात डुबकी मारली
सात अध्ययनातून सात विचारांची पाने उलगडली

पुण्डरीक अ. १) संसाररूपी पुष्करणी कषाययुक्त कर्मरूपी पाण्याने भरली

कामभोगाच्या दलदलीत आर्यरूपी कमळे उमलली

चार वार्दीची भेट झाली, पुष्करणीतील श्रेष्ठ पुण्डरीक-कमल घेण्यासाठी धडपड चालली.

अज्ञानाची कास धरली आणि एकमेकांना कमी लेखत लेखत त्यांची इच्छितापासून भटकंती झाली
सिद्ध मार्ग जाणणाऱ्या साधकाने मात्र आध्यात्मिक उन्नतीच्या बळावर इष्टाची प्राप्ती केली ।।

क्रियास्थान - २) भटकंती झालेले अज्ञानी आशा, आकांक्षा, हव्यास, अत्याचार, अनाचारांच्या
बारा क्रियास्थानात अडकले आणि अधर्मस्थानात रमत गेले.

विवेकाचा त्याग करून निष्प्रयोजनाने हिंसा करण्यात मग्न झाले.

चाळीस प्रकारच्या पापश्रुतात स्वतःला झोकत राहिले.

पारिवारिक मोहाच्या पसान्याने अर्थदंडात हरवले.

अनर्थदंडाच्या पापाने जन्ममरणाच्या परंपरेत फिरत राहिले.

तेराव्या इयापथिकी क्रियास्थानातले धर्मस्थानात जागृत झाले.

आत्मार्थी, पुरुषार्थी, मोक्षार्थी बनून निवृत्तीच्या मार्गावर चालू लागले ।।

महापरिज्ञा - ३) जन्ममरणाच्या परंपरेत अडकलेले आहारपरिज्ञेचे अभ्यासू झाले.

आहाराशी संबंधित साऱ्या सावद्य क्रियेत प्रवृत्त झाले.

‘जसा आहार, जशा भावना तसे गतितील परिभ्रमण’, हा कर्मसिद्धांत मात्र ते विसरले.

त्रस-स्थावर एकमेकांचा आधार म्हणून मित्र झाले आणि एकमेकांना खाऊनच जीवन जगू लागले.

ओजआहार, प्रक्षेपआहार, कवलआहार असे आहाराचे विभाजन केले.

सबल म्हणवणाऱ्या माणसाने निर्बल अशा प्राण्यांचे प्राण घेतले.

आहाराचा विवेक करणारे हिंसेपासून दूर होऊ लागले.

त्याग, विरति, प्रतिज्ञा, संकल्प करून यतनावान होऊन विचरण करू लागले ।।

प्रत्याख्यानक्रिया - ४) कर्मसिद्धांत न जाणणाऱ्याने मानवी मनात दडलेल्या अठरा पापस्थानांच्या
अंतःप्रवृत्तीचे वेळोवेळी प्रसंगाप्रसंगाला प्रदर्शन केले.

त्यातून मुक्त व्हायचेच नाही म्हणून अप्रत्याख्यानी बनून पापकर्मांच्या बंधनाचे जाळे विणले.

जीवन जगण्याच्या मुख्य गरजा, ‘अन्न, पाणी, निवाऱ्या’साठी हिंसेचे थैमान घातले.

मन-वचन-कायेच्या वक्रतेने आत्म्याचे भान विसरून जन्म-मृत्यूच्या चक्रात गुरफटले.

सदाचारी, सद्विचारी अनिच्छेने टाळता येतच नाही अशा हिंसेचे भागीदार जरी बनले,

तरी पश्चात्ताप करून, क्षमाभाव धरून, प्रायश्चित्त घेऊन प्रत्याख्यानी बनले

आणि उच्च गतीकडे मार्गक्रमणा करू लागले ।।

आचारश्रुत - ५) मन-वचन-कायेच्या वक्रतेने मिथ्या धारणेच्या आहारी गेले.

सत्याची ओळख न झाल्याने अर्थरहित तत्त्वाने मोक्षमार्गाचे विराधक बनले.

जग एकांत नित्य-एकांत अनित्य, भवीजीव मोक्षगामी, बाकी सारे संसारी.

सूक्ष्माची हिंसा किंवा त्रसांची हिंसा पाप सारखेच, उपयोग लक्षणाने युक्त जीव नाहीच

साऱ्या क्रिया करणारे पंचमहाभूतच, उद्दिष्ट आहार करणारे साधू आधाकर्मीच,

अशी अनेक प्रकारची विधाने करून अनाचाराला गाठले, वाणीचे बंधन सोडले.

एकांतवादी बनून वादविवादाला पाचारण केले.

आशुप्रज्ञ बुद्धिमानांनी, साधकांनी वचनगुप्ती साधून अनेकांत दृष्टीने चिंतन केले.

आणि श्रुत चारित्र्यरूपी धर्माला, सद्भावाच्या सत्तेला मानले.

कर्मानि बांधलेल्या, कर्मातून कर्मानेच सुटका होते हे जाणून, सर्व प्राणिमात्रांवर मैत्रीभाव ठेवून गुणग्राहकतेने माध्यस्थभावाने उत्कृष्ट संयमाचे अनुष्ठान केले ॥

आर्द्रकीय - ६) वचनगुप्ती साधलेल्या महावीरांच्या परमभक्त 'आर्द्रका'ने, 'गोशालका'च्या उपहासाने

गुरूंच्या व्यापारी, डरपोक म्हणून केलेल्या टीकेला, मार्मिक उत्तर दिले.

जीवात्म्याला एकांत सर्वव्यापक, नित्य मानणारे, ज्ञानानेच मुक्ती होते असे तत्त्व प्रतिपादन करणाऱ्या सांख्यांना क्रियारहित ज्ञानाने मुक्ती मिळत नाही हे पटवून दिले.

दोन हजार ब्राह्मणांना भोजन करवणारे, माणसाला खळीचा पिंड, बालकाला भोपळा म्हणून शिजविणारे 'शाक्य', एका मोठ्या हत्तीची हत्या करून वर्षभर त्याचा आहार करणारे 'हस्तितापस' कसे मिथ्याधारणेत गुंगले आणि देवगतीचे वारस होणार या भ्रमात राहिले.

त्यांना आर्द्रकाने समर्पक उत्तर देऊन सावद्य-क्रिया आणि उद्दिष्ट-आहाराचा त्याग करून निष्कपट भावाने उत्कृष्ट साधक कसे व्हावे, हे पटवून दिले ॥

नालंदीय - ७) विशाल सरोवरात रहाणाऱ्या 'नाल' नागाच्या नावाने 'नालंदा' प्रसिद्ध झाली आणि मनमोहक नैसर्गिक वनश्रीने बहरली.

महावीरांच्या चौदा चातुर्मासिक काळाच्या वास्तव्याने ही धरती पावन झाली.

ज्ञानी, ध्यानी, त्यागी लोकांची कर्मभूमी बनली.

हस्तियाम वनखंडात वास्तव्य करणाऱ्या पेढालपुत्राच्या मनात प्रत्याखानाबद्दल शंका उद्भवली प्रत्याख्यान देणारे घेणारे पापाचे भागीदार असल्याची टोचणी मनाला लागली.

गौतमांनी शंका निरसन करून ९ भंगाने प्रत्याख्यान-पालनाची दिशा दाखविली.

'प्रत्याख्यान कसे सुप्रत्याख्यान', हे सांगून गुरुदरबारी त्यांची हजेरी लावली ॥

(१३) हस्तितापसांना यथोचित उत्तर

साधना देसडला

आर्द्रककुमार जातिस्मरणामुळे दीक्षा घेऊन भ. महावीरांच्या दर्शनासाठी आर्य देशात येतात. वाटेत त्यांना गोशालक व अन्य मतावलंबी लोक भेटतात. प्रत्येकजण स्वतःच्या धर्मात येण्यासाठी आपला धर्म कसा श्रेष्ठ व अंगीकार करण्यास सोपा आहे, हे सिद्ध करू पाहतात. शेवटी हस्तितापस भेटतात. ते म्हणतात, 'आम्ही वर्षातून एकदाच एक हत्ती मारतो व त्याचाच वर्षभर आहारासाठी उपयोग करतो. अशाने एकाच जीवाची हत्या होते व पुष्कळ जीवांची हत्या वाचते.'

आर्द्रकीय अध्ययनात ५३ व्या गाथेत या आक्षेपाला अत्यंत संक्षिप्त उत्तर दिले आहे. ते असे - "वर्षभर एकाच प्राण्याचा घात करणारेही जीव हिंसेपासून निवृत्त होऊ शकत नाहीत. तुमच्या या विचारानुसार गृहस्थही अन्य क्षेत्र-कालवर्ती जीवांची हिंसा करित नाहीत. म्हणून त्यांनाही निर्दोष, अहिंसक मानावे लागेल."

वस्तुतः हे उत्तर काही समाधानकारक नाही. याची थोडी तरी विस्तृत मीमांसा आवश्यक होती. पुढे विकसित झालेला साधुआचार आणि शाकाहारविषयक मान्यता जैन धारणांच्या सहाय्याने पुढील मुद्यात देता येतील.

आर्द्रकमुनींच्या उत्तरात पुढील मुद्दे अध्याहृत होते -

१) हिंसा-अहिंसेचे मापदंड मृत जीवांची संख्या नसून, प्राण्यांची चेतना, इंद्रिये, मन व शरीराचा विकास व मारणाऱ्याचे तीव्र-मंदभाव यावर अवलंबून असते.

२) हत्तीसारख्या विशालकाय, विकसित, चेतनशील प्राण्याला मारणारा, हिंसा दोषांपासून निवृत्त होऊ शकत

नाही. त्यांच्या आश्रित राहणाऱ्या प्राण्यांचा तसेच मांस, रक्त, चरबी यात राहणाऱ्या, उत्पन्न होणाऱ्या अनेक त्रस-स्थावर जीवांचा घात होतो.

३) थोड्या जीवांना मारणारे अहिंसक म्हटले तर मर्यादित हिंसा करणारे गृहस्थ तर हिंसा दोषरहित मानले जातात. गृहस्थ त्रस सोडून (गाथापति-चोर-ग्रहण-विमोक्षण-न्याय) स्थावरांची मर्यादा घेऊन, बाकीच्या स्थावरांचे प्रत्याख्यान घेऊन हिंसा दोषाचे प्रमाण कमी करतात.

४) सप्त कुव्यसनात पण मांस निषिद्ध मानले जाते.

५) जैन साधू तर ईर्यासमितीने युक्त, भिक्षेच्या ४२ दोषांपासून रहित, यथालाभ संतुष्ट होऊन आहार घेतात.

६) 'सर्व जीव समान', असे म्हणून सत्री पंचेंद्रिय मारणे म्हणजे दहा बलप्राण मारणे होय. एकेंद्रियात चार बलप्राण आहेत.

७) शिवाय आपण, वनस्पती शंभर पटीने वाढवू शकतो पण एक हत्ती मारला तर एक वंशच नाश पावतो.

८) पंचेंद्रियांची हत्या करणाऱ्या नरकगामी हस्तितापसांजवळ जास्त वेळ न घालवता आपण अहिंसा पाळणाऱ्या, मोक्षगामी भ. महावीरांच्या दर्शनाला लवकर जावे, या उद्देशाने आर्द्रकमुनी तेथून थोडक्यात उत्तर देऊन निघतात.

९) जैन साधू तर भ्रमरवृत्तीप्रमाणे गोचरी घेतात (दशवैकालिक-दुमफण्फिया-अध्ययन १) उद्दिष्ट आहार घेत नाहीत. हस्तितापसांप्रमाणे वर्षभराची तरतूद व अन्नाबद्दलची आसक्ती न ठेवता, रोजची रोज गोचरी घेतात.

१०) मांस कच्चे असो, शिजविले जात असो किंवा शिजविलेले असो, तिन्ही अवस्थांमध्ये अनंत निगोदिया जीवांची उत्पत्ती होत असते, अशी मान्यता अनेक जैन आचार्य नोंदवितात.

खरे तर कोणत्याही अन्नात, थोड्या काळानंतर त्रसजीवांची उत्पत्ती होत असते. ज्यात त्रसजीव जास्त ते अन्न निषिद्ध आहे. मांसात निरंतर जीवोत्पत्ती होतच असते. नुसता स्पर्श केला तरी जीवहत्या होते.

११) मनुस्मृतीसारख्या ब्राह्मणधर्मीय ग्रंथात म्हटले आहे -

अनुमन्ता विशसिता, निहन्ता क्रयविक्रयी ।

संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च, खादकश्चेति घातकाः ॥

अर्थात्, प्राण्यांच्या वधाची आज्ञा देणारा, शरीरावर घाव करणारा, मारणारा, खरेदी करणारा, विकणारा, शिजवणारा, वाढणारा, खाणारा ह्या सर्व आठही व्यक्ती घातक आहेत.

१२) मांस खाणाऱ्याला परमधामी देव म्हणतात -

तुहं पियाइं मंसाइं खण्डाइं सोल्लगाणि य ।

खाविओ मि समंसाइं अग्गिवण्णाइं णेगसो ॥ उत्तराध्ययन १९.७०

१३) श्रेणिक राजा देखील पंचेंद्रिय हत्येमुळे नरकात गेले - अशी जैन पौराणिक मान्यता आहे.

१४) सव्वे जीवा सुहसाया दुहपडिकूला । सव्वेसिं जीवियं पियं ॥ आचारांग

या सहअस्तित्वाच्या जीवनसूत्रांचा सर्वांनीच विचार करून जो प्राकृतिक आहार आहे, सहज उपलब्ध आहे, त्याचाच स्वीकार करावा.

हस्तितापस मनाला पटत नाहीत. एकाच प्रकारचे अन्न रोजच वर्षभर खाणे हे रुचत नाही. नुसताच मांसाहार पण करतील असे वाटत नाही. संयम पथावर जाणारे निरवद्य आहारच घेतात.

(१४) सद्यःकालीन परिप्रेक्ष्य में सूत्रकृतांग

मंगला गोठी

अध्यात्मप्रत्ययिक क्रियास्थान का वर्णन 'क्रियास्थान' नामक दूसरे अध्ययन में आया है। जो तेरह क्रियास्थान बताये गये हैं, उनमें से ये आठवाँ क्रियास्थान हैं। संक्षेप में इसका अर्थ यह है कि किसी ने हमें कष्ट नहीं पहुँचाया, फिर भी मन विषाद और निराशा से भरा हुआ है। इसका कारण है क्रोध, मान, माया, लोभ ये चित्त में समाये हुए चार कषाय।

मकड़ी के जाल के समान, हम खुद को ही नकारात्मक सोच के जाल में बन्दी बनाकर उसमें जकड़ते चले जाते हैं। मैं तो समझती हूँ कि, आज का मनुष्य सबसे ज्यादा अध्यात्मप्रत्ययिक का ही शिकार बना हुआ है। दहशतवाद, गुण्डागर्दी, अत्याचार और खून की होली खेलनेवाले ये सब मुठ्ठीभर लोग स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। लेकिन खुद को ही खोखला बनानेवाला अध्यात्मप्रत्ययिक रोग (नासूर) की तरह बढ़ता ही जा रहा है। ये नकारात्मक सोच स्लो पॉइज़न का काम कर रही है।

इसके महाभयंकर परिणाम अब हमारे सामने वास्तविक रूप से उभरकर आ रहे हैं। ब्लडप्रेसर, डिप्रेशन, अल्जायमर, स्क्रिज़ोफेनिया ये सब इसी सोच के परिणाम हैं। आजकल तो बचपन में ही इसका बीज बोया जाता है। शिक्षा, खेल, कला जैसी हुनर में बढ़ती हुई स्पर्धारूपी कषाय ने, बच्चों की निरागसता छीन ली है। परिणाम - बातबात पे चिडचिडापन, जिद्दी स्वभाव, दूसरों को कम लेखना, बड़ों का आदर न करना, ये अब 'घर घर की कहानी' बन गयी है।

बात घर की ही आ गयी है, तो हम उसी पे थोड़ा प्रकाश डाले। पहले की तरह ना तो हम पारतंत्र्य में जी रहे हैं, ना बड़ी बड़ी नैसर्गिक आपत्ति का शिकार बने हैं, ना तो प्लेग या (बड़ी माता) जैसे महाभयंकर प्रकोप से घर के घर बेघर हो रहे हैं। परन्तु हम अपने ही घर में बेघर हो रहे हैं, वो हमारे ही खुद के चार कषाय के कारण। मन का सुख पाने के प्रयास में हम आत्मिक सुख खो बैठे हैं। ये बात विस्तृत करने के लिए कवि की एक पंक्ति ही काफी है - "अमृत घट भरले तुझिया दारी, का वणवण फिरसी बाजारी।"

हमारे चार कषाय ही चार वादियों के समान आत्मरूपी 'पद्मवरपुण्डरीक' को ऊपर उठाने के बजाय, कर्मरूपी कीचड़ में फँसाते जा रहे हैं। खुद की ही दिशाभूल कर रहे हैं। निराशा से भरा हुआ मन क्या 'आहार-परिज्ञा' का पालन करेगा ? उसे भूलाने के लिए ज्यादा आहार ग्रहण किया जाता है, या उसे छिपाने के लिए उपवास का सहारा लिया जाता है। जब हम निजी जिंदगी से ही उभर नहीं पाते, तो सम्पूर्ण जगत् के सजीवता का क्या अनुभव करेंगे ? 'प्रत्याख्यान' तो बहुत दूर की बात है। विषादभरा एकांगी दृष्टिकोण खुद के अलग-अलग आयामों को समझने में असमर्थ है, तो अनेकान्तवाद जैसा परिपूर्ण सिद्धान्त क्या हम जानें ? लेकिन हाँ ! 'आर्द्रक' ने 'गोशालक' को दिया हुआ जवाब मुझे यहाँ सर्वथा उचित और योग्य दिखाई देता है। ऐसे लोग अनेक लोगों से घिरे होनेके बावजूद भी, उनका एकान्तवास चालू रहता है। वे हमेशा अलिप्त रहते हैं। 'स्थिति' एकसमान है, लेकिन आन्तरिक भाव डोरी के दो छोर। भ. महावीर की एकान्तवास की तार, आत्मा से जुड़ी हुई थी और अध्यात्मप्रत्ययिक का दोष लगनेवाले की तार, मन जैसे पुद्गल परमाणु से जुड़ी हुई है। एक छोर मोक्ष की तरफ जाता है, तो दूसरा छोर संसारचक्र में गिरा देता है।

(१५) अद्गस्स कहाण्यं

आशा कांकरिया

तेणं कालेणं तेणं समएणं अणज्ज-विसए अद्गपुरं नाम नयरं होत्था । तत्थ अद्ग-राया रज्जं करेइ । तस्स पुत्तो वि 'अद्गकुमार' नामेण पसिद्धो ।

तम्हि समए आरियखेत्तठियस्स रायगिहस्स राया सेणिओ आसी । तस्स पुत्तो चउव्विहबुद्धीहिं संजुत्तो अभयकुमरो

।

एगया अद्दगराइणा सेणियस्स कए द्यूहत्थेण बहुमोल्लं पाहुडं पेसियं । अद्दगकुमारेण वि अभयस्स कए काइं वत्थूणि पाहुडरूवेण पेसियाणि । दुवे पाहुडाणि घेऊण अद्दगराइणो दूओ सेणियस्स अत्थाणमंडवे पविट्ठे । सेणिएण तस्स जहोचियं बहुमाणो कओ । पाहुडाणि अंगीकयाणि ।

जया सेणिएण अद्दगराइणो कए पडिपाहुडं सज्जीकयं तथा अभयकुमारेण वि अद्दगकुमरस्स कए विसिट्ठं पडिपाहुडं सज्जीकयं । अभयकुमारेण नाणस्स उवओगेण जाणियं, ‘अद्दगकुमारो परमट्ठेण भविजीवो अत्थि ।’ तस्स पडिबोहत्थं अभयकुमारेण एगाए मंजूसियाए एगा अप्पडिमा जिणपडिमा तहा मुहपत्ती ठविया । सा मंजूसा द्यूहत्थेण तस्स कए पेसिया ।

मंजूसियं पासिऊण अद्दगकुमारेण कोऊहलवसेण तुरियं तुरियं सा उग्घाडिया । जिणपडिमं, मुहपत्तिं च दट्ठूण सो मणम्मि चिंतिउण लग्गो, ‘एयाणि वत्थूणि मए पुव्विं कत्तो वि पासियाणि ।’ एयावसरे तस्स जाइसरणं समुप्पन्नं । सो सरइ जहा - “वसंतपुरम्मि नयरे अहं एगो उवासगो होत्था । संसारस्स असारत्तं मुणिऊण अहं भज्जाए सह पव्वइअे । सामण्णे वि एगया भज्जं पासिऊण तम्मि अणुरत्तो जाओ । मए तस्स अइचारस्स आलोयणा न कया । अणालोइय -अपडिक्कंत-अवत्थाए कालमासे कालं किच्चा देवलोगम्मि उववन्नो । देवलोगाओ चइऊण अहं अद्दगपुत्तो ति जाओ ।”

एयारिसो अप्पणो पुव्वभववुत्तंतं जाणिऊण अद्दगो संसाराओ विरत्तो । आरियदेसे आगंतूण सो जिणसासणे पव्वइओ । भगवं वद्धमाणस्स दंसणट्ठं तेण विहारजत्ता आरद्धा । मग्गम्मि तस्स गोसालओ, हत्थितावसो परिव्वायगो बुद्धभिक्षु इच्चेइयाइं परदंसणवाइणो मिलिया ।

ते सव्वे अप्पणो दंसणाइं परमट्ठरूवेण कहेंति । निग्गंथधम्मं उवलक्खिऊण उवहासपरं भासंति । अद्दगेण एगेगस्स कहणं सुणियं । तेसिं निराकरणं कयं । निग्गंथधम्मस्स महत्तणं तेण अणुजुत्तीहिं साहियं । एवं पयारेण अद्दगेण सव्वे परसमयवाइणो पराइया ।

मग्गे तेसिं सव्वेसिं सह अद्दगस्स जो वायपडिवायं होइ तस्स संकलणं सूयगडस्स बीयं - सुयक्खंधस्स ‘अद्दइज्ज’ अज्झयणे दीसइ ।

सूयगडस्स ससमय-परसमय-रूवेण जा पसिट्ठी सा अद्दइज्ज-अज्झयणे सविसेसं दीसइ ।

(१६) हस्तितापस के मत का संभाव्य खण्डन

संगीता मुनोत

वध तो बस वध है, हस्तितापस का है यह कहना
भावों के परिणामों को, लेकिन उसने कहाँ पहचाना ।
भोगरूप आमिषरत प्राणि, स्थूलरूप हिंसा कर जाना
सूक्ष्मता में इसकी छिपा है, जीवन का सत्य खजाना ॥

सूत्रकृतांगसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में ‘आर्द्रकीय’ नामक छठाँ अध्ययन है । उसमें आर्द्रकमुनि, गोशालक आदि अन्यमतावलम्बियों को प्रश्नों का उत्तर देते हैं । उसी श्रृंखला में नित्य वनस्पति छेदन की अपेक्षा, एक बार हस्तिवध करना - कम पापमय है, इस मिथ्याधारणा को हस्तितापस उचित मानते हैं । आर्द्रकमुनि उसके इस भ्रम को सत्य कथनों से दूर करते हैं । ‘पंचेन्द्रिय वध में ज्यादा पाप है’, इसी विषय को लेकर कुछ और तथ्योंको आपके समक्ष रखना चाहती हूँ ।

यदि हम एक ही सत्य माने कि, ‘सब आत्मा समान हैं और सबको मारने में एक समान पाप है’, तो फिर

‘शाकाहार-मांसाहार’ में भेद ही नहीं रहता । भक्ष्य-अभक्ष्य का भेद नहीं होता । क्यों लोग खेती करते ? क्यों भ. ऋषभदेव लोगों को असि-मसि-कृषि सिखाते ? बस ! एक ही प्राणी मारो और साल भर तक खाते रहो ।

जैनदर्शन में जीवों का वर्गीकरण बहुत सूक्ष्मतापूर्वक किया गया है । एकेन्द्रिय जीव से उसका विकास होते-होते, अनन्त पुण्य का संचय होने पर उसको पाँच परिपूर्ण इन्द्रियाँ मिलती हैं । दस प्राण और छह पर्याप्तियाँ मिलती हैं । पुनर्जन्म को माननेवाले अन्यधर्म भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि जीव ८४ लाख योनि से भटककर जब पुण्य का संचय और बुरे कर्मों का क्षय करता है तब उसे पाँचों इन्द्रियों से परिपूर्ण शरीर तथा मन की प्राप्ति होती है । उसमें भी ज्ञान, दर्शन, योग, उपयोग आदि गुणों का प्रकटीकरण भी पंचेन्द्रिय में ज्यादा होता है । जिससे वह व्रत-प्रत्याख्यान करने की क्षमता रखता है, कर्म काटने का सामर्थ्य रखता है । इसीलिए तो आगम में, नरक में जाने के चार कारणों में एक कारण, ‘पंचेन्द्रिय का वध’ स्पष्ट रूप से दिया है न कि ‘एकेन्द्रिय’ ।

एकेन्द्रिय जीव की हिंसा हम प्रायः अर्थदण्ड के लिए करते हैं, अपनी जीवनचर्या चलाने के लिए करते हैं । परन्तु पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा प्रायः जिह्वा की लोलुपता के लिए, निर्दयता से, क्रूर भावों से की जाती है । इससे ‘जीवन-चक्र’ बिगड़ता है । यह ‘अनर्थदण्ड’ है, इसमें ज्यादा पाप है । यह समझाने के लिए हम आज के परिवेश से अनेकों उदाहरण दे सकते हैं ।

जैसे - एक प्रधानमंत्री की आत्मा और एक भिखारी की आत्मा समान है फिर भी यदि प्रधानमंत्री मरता है तो राष्ट्रीय शोक और भिखारी मरे तो किसी को पता भी नहीं चलता ।

एक नकली हार है और दूसरा सोने में भी हिरे-पन्ने से जुड़ा हुआ है । दोनों में से किसके गुम होने पर ज्यादा दुख होगा ? अर्थात्, जिसका मोल, सुन्दरता, उपयोगिता अधिक, उसका गुम होना अधिक दुःखदायक होगा ।

ऐसे अनेकों तथ्य और उदाहरण हैं फिर भी उससे भी कहीं ज्यादा मायने रखती है, ‘हमारी खाने के प्रति आसक्ति’, जो इन भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक न रखने के कारण पाप को बढ़ावा देती है ।

माना कि हरेक आत्मा समान है । इसको नकारा भी नहीं जा सकता । फिर भी उनकी विशेषताओं में तो फर्क है । इसलिए भ. महावीर ने कहा है कि, ‘नय’ और ‘कर्मसिद्धान्त’ का आधार लेकर, किसी तथ्य की सत्यता का निर्णय लिया जाता है । इसकी पुष्टि के लिए ‘आचारांग’ और ‘उत्तराध्ययन’ में अनेकों उदाहरण मिलते हैं ।

आखिर में, मैं कहना चाहती हूँ कि - ‘क्या हमारा पेट मरघट है जो जीवों को मारों, उसमें डालते रहो ?’

(१७) अप्रत्याख्यान आणि प्रत्याख्यान : एक चिंतन

कल्पना मुथा

सर्व संसारी आत्म्यांची स्वाभाविक स्थिती ही अप्रत्याख्यानी आहे. म्हणजेच कर्मबंधाने युक्त आहे. माणसाला जगायला अनेक आवश्यकता लागतात. परिवारपालन, उपजीविका, क्षुधानिवृत्ती यासाठी षट्कायिक जीवांचा सढळ हाताने वापर करणे, त्यांना त्रास देणे, त्यांच्यावर अधिकार गाजवणे, जरा कुठे अनुकूलता मिळाली की त्यांच्या सहवासात येऊन त्यांची हिंसा करणे, अर्थात् हिंसा करणे हे जरी लक्ष्य नसले, त्यांच्याविषयी अनुकंपा, संवेदनशीलता असली तरी उदरनिर्वाहासाठी नाईलाजाने हिंसा होत रहाते आणि त्यांचा हा प्रवाह अखंडपणे चालू रहातो आणि तरी सुद्धा व्रत न घेता संसारात निवास करणे आणि षट्जीवांचा सहवास हेच सर्व जीवांच्या अविरतीचे कारण होय. आस्रवाचे कारण होय.

अप्रत्याख्यान हा स्वभाव आहे. तो सृष्टीचा नियम आहे. मानवी मनातल्या सगळ्या विकृती, दुष्प्रवृत्ती कोणत्या ना कोणत्या रूपात पापाच्या श्रेणीत येतात. यामुळे त्यांचे पापकर्मबंध हे चालू असतात. त्यापासून परमृत्त होण्यासाठी त्यांचे निराकरण करण्यासाठी जैन परंपरेत प्रत्याख्यान (प्रतिक्रमण) ही एक महाऔषधी सांगितली आहे.

प्रत्याख्यान - प्रति + आ + ख्यान = निश्चितपणे त्याविषयी सांगणे. अर्थात् प्रत्याख्यान म्हणजे विरती, त्याग, प्रतिज्ञा, संकल्प.

प्रत्याख्यान ही अतिशय प्राचीन परंपरा आहे. १३ क्रियास्थानांच्या पलीकडे जाऊन ही क्रिया आहे. प्रत्याख्यान हे आत्म्याशी निगडित आहे. तसेच ते कर्मसिद्धांत व पुनर्जन्माशीही निगडित आहे. त्यामुळे विवेकपूर्वक सावधान्यांचा त्याग करावा. पाप हे नेहमी आपल्या मर्जीने होत असते आणि त्याला चालना देत राहिलो तर विनाशतेतच त्याचे परिणाम होतात. म्हणून प्रत्याख्यान हे १८ पापस्थानांचे करायचे, विशेषतः कषायांचे करायचे.

भूतकालीन जीवनाचे प्रामाणिकपणाने निरीक्षण करून जो काही पापरूपी कचरा आत पडला आहे, त्याचा सद्गुरू, अंतरात्म्याच्या साक्षीने पश्चात्ताप करावा (प्रतिक्रमणाद्वारे) व भविष्यात पुन्हा या दुष्प्रवृत्तीमुळे होणाऱ्या पापबंधापासून मुक्त होण्यासाठी संकल्प करावा.

संसारत आहोत तोपर्यंत राग, द्वेषरूपी कषाय हे (कर्माच्या उदयामुळे) राहणारच. पण त्याची तीव्रता, उग्रता राहता कामा नये. हीच सावधानता, जागरूकता यायला हवी.

मनात सतत केलेल्या पापाचे स्मरण ही ग्लानीला जन्म देते आणि हीच ग्लानी हीन भावना निर्माण करते. या पापामुळे परलोक व इहलोक दोन्हीकडे निंदानालस्ती, दुःख भोगावे लागते. दुर्विचार, कुसंस्कार यापासून दूर रहाण्याकरिता 'प्रत्याख्यान' ही एक आध्यात्मिक साधना आहे. याने आत्मा हलका (भारहीन) होतो, शुद्ध होतो. म्हणून पापाचे, परिग्रहाचे, गुप्तीचे, समितीचे, परिषदाचे प्रत्याख्यान घेणे याला जैन साधनेत खूप महत्त्व आहे.

या पंचम काळात मोठमोठे व्रत घेऊ शकत नाही, पण छोटे मोठे खानपानविषयक नियम तसेच इतरही नियम जसे, 'आज रागवायचे नाही', 'कोणाचीही निंदा करायची नाही', 'मौन धारण करायचे', 'एकेंद्रिय हिंसा टाळता येणार नाही पण संकल्पपूर्वक त्रसहिंसा करायची नाही'. यथाशक्ती अशा नियमाने त्या प्रत्याख्यानाचे ओझे वाटणार नाही. पण प्रत्याख्यान घेतलेच नाही तर कर्मबंधही चुकणार नाहीत.

प्रत्याख्यानाला प्रयत्नपूर्वक आणि तीव्र आत्मशक्तीची जोड लागते. विचार करणाऱ्या मनुष्य योनीतच ही सर्व क्षमता आहे. प्रत्याख्यान हे चेतनच घेऊ शकतात, अजीव ते घेऊ शकत नाहीत. पंचेंद्रिय मनुष्य इच्छा असल्यास बऱ्याच प्रमाणात आणि पंचेंद्रिय तिर्यच हे अल्प प्रमाणात प्रत्याख्यान घेऊ शकतात. क्षेत्राच्या प्रभावामुळे नारकी व देवगतीतले जीव प्रत्याख्यान घेऊ शकत नाहीत.

उपसंहार :

* जैन धर्मात सर्वात महत्त्वाचा सिद्धांत. महावीरांनी प्रत्याख्यान व प्रतिक्रमणाला नित्य आचारात स्थान दिले आहे.

* आहाराच्या मर्यादा घ्या, असा संकेत मिळाला नसून १८ पापस्थाने व कषाय यांची जाणीव करून दिली आहे.

* सर्व साधुआचार प्रत्याख्यानाशी जोडलेला आहे.

* शुभसंकल्प हेच प्रत्याख्यानाचे सार होय.

* प्रत्याख्यान हे फक्त आहाराचेच नसून भावशुद्धीला महत्त्व आहे.

* सुखासमाधानात असलेल्या व्यक्तीने, 'कुठे थांबायचे' हे ठरवावे आणि हेच प्रत्याख्यान शिकविते.

* आपल्यात असलेली प्रमादता, अविवेकता नष्ट करणे आणि जागरूकता निर्माण करणे हाच प्रत्याख्यान घेण्यामागील हेतू होय.

* प्रत्याख्यान घेणे, संयम पाळणे हे मोक्षप्राप्तीचे साधन होय.

* ही १८ पापस्थाने असली तरी त्या अंतःप्रवृत्ती आहेत. मानवी स्वभावात दडलेल्या भावभावना आहेत. त्या नाकारून चालत नाहीत. त्यांचा नाश करता येत नाही. त्या योग्य, उचित, संयत ठेवाव्यात. या भावनांना थोडीही उत्तेजना दिली, थारा दिला तर तो प्रत्याख्यानाचा भंग होईल.

हे सर्व जाणून षट्जीवांविषयी आत्म्यौपम्य भाव ठेवावेत. त्यांचे भय वाढीला लागणार नाही यासाठी विलासितता फॅशन, हौस, कोणत्याही चिकित्सा हे सर्व करताना त्या जीवांविषयी करुणा ठेवावी.

(१८) सूत्रकृतांग (२) : काही विशेष व्यक्तिरेखा

ज्योत्स्ना मुथा

सूत्रकृतांगाचा मुख्य विषय 'स्वसमय' व 'परसमय' आहे. अहिंसा, अपरिग्रह, आहार, साधुचर्या, १८ पापस्थाने, क्रियास्थाने, प्रत्याख्यानाचे महत्त्व, गुरु-शिष्य संबंध, त्याग-विरति, समाधिमरण यांद्वारे 'स्वसिद्धांत' सांगितला आहे. तर बौद्ध, सांख्य, वैदिक, चार्वाक इ. दर्शने व पंचमहाभूतवाद, तज्जीवत्च्छरीरवाद, ईश्वरकारणिकवाद व नियतिवाद इ. वादांचे ठिकठिकाणी उल्लेख करून 'परसिद्धांत' दर्शविला आहे. या सर्वांचा एकत्रित परिचय होतो तो 'पुण्डरिक', 'आर्द्रकीय' व 'नालंदीय' या अध्ययनात आलेल्या संवादांद्वारे. त्यात उठून दिसणाऱ्या व्यक्तिरेखा म्हणजे 'गोशालक', 'आर्द्रक', 'गौतम' व 'पार्श्वपत्य पेढालपुत्र'.

१) गोशालक : सूत्रांत प्रत्यक्ष नामोल्लेख नाही. चूर्णिकार, टीकाकाराच्या आधारे तसेच भगवतीसूत्रातील १५ व्या शतकाच्या आधारे, गोशालक स्वतःला महावीरांचा शिष्य समजतो. सतत त्यांच्या मागोमाग फिरत व तप करत मंखलीपुत्र गोशालक अनेक प्रश्नांनी महावीरांना भंडावून सोडतो. पुढे जाऊन स्वतःचाच स्वतंत्र 'आजीवक' संप्रदाय स्थापन करून, महावीरांपेक्षा जास्त शिष्यसमुदाय जमवणारा, स्वतःलाच तीर्थंकर म्हणवणारा, आत्मप्रौढी असा गोशालक महावीरांच्या दर्शनाला निघालेल्या आर्द्रकाला मध्येच अडवून - 'महावीर कसे दुटप्पी आचरण करणारे, डरपोक, वणिक, चंचलवृत्तीचे, लोकसमूहात वावरणारे', अशी भरपेट निंदा करतो. तो धाडसी व मत्सरी असून स्वतःच्याच साधूंचे सचित्तजल, बीजकाय, आधाकर्मी आहार, स्त्रीसेवन इ. आचाराचे छातीठोकपणे समर्थनही करतो. असा हा 'स्पष्टवक्ता' गोशालक.

२) आर्द्रक : गोशालकाच्या अगदी उलट की ज्याने महावीरांना अजून प्रत्यक्ष पाहिलेही नाही. अनार्य देशातला, केवळ जातिस्मरणामुळे प्रब्रज्या धारण केलेला, महावीरांच्या दर्शनाच्या अतीव ओढीने निघालेला, परंतु तरीही रस्त्यात भेटलेल्या गोशालकाच्या प्रत्येक आक्षेपाला मार्मिकपणे खोडून काढणारा असा आर्द्रक. यावरूनच त्याचा निर्ग्रंथधर्मावर दृढ विश्वास दिसून येतो. 'वणिकाची उपमा एकदेशीय कशी सत्य आहे, कारण ते सर्वांचा आत्मिक लाभ पाहून उपदेश देतात, पण सर्वथा व्यापारी नाहीत' हेही पटवून देतो. यावरून 'रंगूनी रंगात साऱ्या, रंग माझा वेगळा' या पद्याची आठवण करून देणारे असे महावीर होते, हे आर्द्रकाच्या विवेचनातून स्पष्ट होते. आर्द्रक बुद्धिमान व वाक्पटू होता. तो बुद्ध्याच्या आहाराची उपहासात्मक टीका करतो तर सलगी दाखवणाऱ्या सांख्यांना झटकून टाकतो. असा हा 'व्यवहारी' आर्द्रक.

३) गौतम, ४) पार्श्वपत्य पेढालपुत्र : हे दोघे दोन वेगवेगळ्या तीर्थकरांच्या परंपरेतले. तरी सहज शंका विचारणारा पार्श्वनाथांच्या परंपरेतील पेढालपुत्र. त्याच्या मनात प्रत्याख्यानाविषयी गैरसमज आहे, अज्ञान आहे, अनभिज्ञता आहे. तरीही संकोच न करता पृच्छा करतो. 'गौतम' पूर्वाश्रमीचे प्रकांड पंडित तर आता भ. महावीरांचे प्रथम गणधर तरीही निराभिमानी. गौतमाने पेढालपुत्राला त्रस व त्रसभूत शब्दातील साधर्म्य दाखवून सुप्रत्याख्यानाचे दिग्दर्शन, विविध उदाहरणाद्वारे करविले. आभार न मानता, जाणाऱ्या पेढालपुत्राला आपल्या वकिली बुद्धीने, कृतज्ञता व्यक्त करण्यास भाग पाडले. पेढालपुत्रानेही आपण आधीच्या परंपरेतील असूनही आपली चूक मान्य करून, चातुर्यामधर्म सोडून, सप्रतिक्रमण पंचमहाव्रतात्मकधर्माचा अंगीकार केला. गौतमाने विनयपूर्वक महावीरंकडून त्याला पंचमहाव्रतात्मक धर्म देऊन, श्रमणसंघात सम्मीलित केले. यावरून उदकपेढालपुत्राची सत्य जाणण्याची व पचविण्याची वृत्ती तर गौतम हे 'विद्याविनयेन शोभते'चे प्रतीक.

उपसंहार : वरील व्यक्तिरेखांमुळे सूत्रकृतांगातील मुख्य विषयाला पुष्टी मिळते. जसे एखाद्या चित्रपटात जर

खलनायक नसेल तर नायकाचे कर्तृत्व दिसून येत नाही, त्याप्रमाणे गोशालकासारखा कृतघ्न शिष्य नसता तर महावीरांची आध्यात्मिक उंची दिसली नसती. त्यांच्या विचारांचे मंथन करविण्यास व पंचमहाव्रतांचे नवनीत काढण्यात गोशालकाच्या आरोपांचा खूप मोठा वाटा आहे. एवढे असूनही गोशालकाच्या 'नियतिवादा'ला षड्दर्शनात स्थान मिळाले नाही हेही आश्चर्यच !

स्वतःचे मत स्वच्छ व स्पष्ट असेल तर विरोधीही आपलासा करता येतो, हे गौतम-पेढालपुत्राच्या संवादावरून स्पष्ट होते जे आजच्या राजकारण्यास उपयोगी आहे. अनेक मतप्रवाह असले तरी वादविवाद न करता सुसंवाद साधता येतो, यावरही येथे प्रकाश पडतो. समन्वयवृत्ती, कृतज्ञता, परस्परांमधील आदर इ. गुणांची जोपासनाही दिसून येते. गौतम-महावीर म्हणजे 'ग्रंथ' अध्ययनातील गुरु-शिष्य नात्याचा आदर्श परिपाक होय, जे आजच्या शिक्षण व्यवस्थेसाठी अतिशय मार्गदर्शक आहे.

थोड्या फार त्रुटी वगळता 'स्वसमय-परसमय' या केंद्रस्थानी असलेल्या विषयाला, वरील व्यक्तिरेखांमुळे रोचकता आली आहे. पक्षांतर, धर्मांतर करणाऱ्यांसाठी हा जणू आदर्श वस्तुपाठच आहे.

(१९) सूत्रकृतांग : एक सम्पूर्ण आगम

हंसा नहार

१) एक गाथा में सार -

बुद्धिज्जति तिउट्टिज्जा बंधणं परिजाणिया ।

किमाह बंधणं वीरो, किं वा जाणं तिउट्टई ? ॥

सम्पूर्ण आगम का सार, सूत्रकृतांग का सम्पूर्ण तत्त्वचिन्तन इस गाथा में समाविष्ट हो गया है। देखने में आता है कि कुछ लोग ज्ञानी हैं, पर क्रिया में उदासीन हैं। कुछ लोगों में क्रिया है, पर वे ज्ञान में उदासीन हैं। दोनों प्रकार के मनुष्य बन्धन यानी अष्टकर्मबन्धन और आरम्भ-परिग्रह से दूर नहीं हो सकते।

क्रियाजड के उदाहरण - मेरा तो तप हमेशा चालू रहता --- क्या तप को समझा ? रसनेन्द्रिय पर संयम आया ? मैं तो मन्दिर गये बिना पानी भी नहीं पीती --- क्या भगवान को समझा ? मैं तो रोज की चार सामायिक करती हूँ --- क्या समताभाव आया ?

शुष्कज्ञानी का उदाहरण - मैं तो जैनाल्लोजी की परीक्षा में हमेशा प्रथम आती हूँ --- आचार में कुछ आया ?

जैनदर्शन का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त - 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः ।'

२) तीन अध्याय जिसमें अन्य मतों, दर्शन एवं उनकी मान्यताओं की चर्चा -

अ) स्वसमय और परसमय का प्रतिपादन है ऐसा प्रथम श्रुतस्कन्ध का प्रथम 'समय' अध्ययन ।

ब) जहाँ अनेक दर्शनों या दृष्टियों का संगम होता है ऐसा प्रथम श्रुतस्कन्ध का बारहवाँ 'समवसरण' अध्ययन ।

क) श्वेत कमल की उपमा के माध्यम से धर्म, धर्मतीर्थ तथा निर्वाण के महत्त्व को समझानेवाला, एक ललित काव्य । कल्पना का रसास्वाद करानेवाला द्वितीय श्रुतस्कन्ध का प्रथम 'पुण्डरीक' अध्ययन ।

आधारस्तम्भ, तीन तत्त्व हैं - जीव, जगत्, आत्मा । परन्तु भारतीय संस्कृति मुख्य रूप से आत्मा के इर्दगिर्द घूमती है । आत्मा के बन्धन एवं मुक्ति ही प्रत्येक धर्मदर्शन का लक्ष्य है । आत्मवाद, कर्मवाद, परलोकवाद, मोक्षवाद इन चार विचारों में भारतीय दर्शनों के सामान्य सिद्धान्त समाविष्ट होते हैं । उस समय कितनी धारणाएँ और मतमतान्तर चलते थे ? ३६३ मत थे । भ. महावीर ने सभी मान्यताओं को, स्याद्वाद की स्थापना कर, समन्वय करते

हुए उस युग को प्रभावित किया। उनकी मान्यताएँ मात्र बौद्धिक ही नहीं, व्यावहारिक भी हैं।

यद्यपि सूत्रकृतांग जैनदर्शन का ग्रन्थ है, फिर भी उसमें जैनेतर मान्यताओं का विवेचन इसलिए प्रासंगिक है कि साधक विभिन्न धारणाओं-मान्यताओं को समझकर, यथार्थ को सम्पूर्ण आस्था और श्रद्धा के साथ स्वीकार करे। क्योंकि मिथ्यात्व की बेडी सबसे भयानक है।

३) दार्शनिक संवाद -

यह एक दार्शनिक संवाद है जो उपनिषदों के शैली की याद दिलाता है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध का छठा 'आर्द्रकीय' अध्ययन पाँचों मतावलम्बियों (गोशालक, बौद्धभिक्षु, ब्राह्मण, एकदण्डी, परिव्राजक (सांख्य), हस्तितापस) के साथ आर्द्रककुमार का जो वाद-प्रतिवाद हुआ, उसका इसमें संकलन है। इसमें आर्द्रकमुनि सरस-कथा शैली में, संवादों के रूप में, भ्रान्त मान्यताओं का निराकरण करके, स्वमान्यता की प्रस्थापना, बड़ी सहजता के साथ करते हैं।

'आइक्यमाणो वि सहस्समज्झे एगंतयं सारयती तहच्चे।' (२.६.४) अध्यात्मयोग की यह महान अनुभूति आर्द्रक ने सिर्फ दो शब्दों में ही व्यक्त करके गोशालक की बाह्य दृष्टि-परकता को ललकार दिया है। क्योंकि वे अभी तक उनसे मिले नहीं थे। संवादों में इस प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूतियों से आर्द्रकीय अध्ययन बड़ा ही रचक व शिक्षाप्रद बन गया है।

उपसंहार :

द्वितीय अंग आगम की तुलना बौद्ध परम्परा मान्य 'अभिधम्मपिटक' से की जाती है। सूत्रकृतांग में जहाँ जैनदर्शन की प्रमुख मान्यताओं का वर्णन-विश्लेषण है, वहीं भारतीय संस्कृति में उपजी समस्त मान्यताओं का भी विस्तारपूर्वक प्रामाणिकता से विवेचन है। अगर कोई यह कहे कि एक सम्पूर्ण आगम का नाम बताइए, जिसे पढने पर सम्पूर्ण भारतीय दर्शन तथा जैन आचारसंहिता का अध्ययन हो सके, तो निःसंदेह सूत्रकृतांग का नाम सर्वप्रथम उभर आता है। दर्शन के साथ जीवन व्यवहार के उच्च आदर्श भी यहाँ उपस्थित हैं। कपट, अहंकार, जातिमद, ज्ञानमद आदि पर भी कठोर प्रहार किये हैं। सरल, सात्विक, सामाजिक जीवन दृष्टि को विकसित करने की प्रेरणा सूत्रकृतांग से मिलती है।

७) नालंदाय अध्ययन - यात प्रथम गणधर इंद्रभूति गौतमांचा उपदेश आहे. यामध्ये प्रथमच 'श्रावकाचार' मांडला आहे.

सर्व अंगांचे सार म्हणजे 'आचारांग' यात अहिंसा, समता, वैराग्य, प्रमाद इ. मुद्दे आहेत. कठीण, क्लिष्ट लहान सूत्रातून गहन अर्थ सांगितला आहे. भद्रबाहूंना हा अपुरा वाटला. म्हणून त्यांनी भाग दोन जोडला असावा, असे एक मत आहे. दुसऱ्या श्रुतस्कंधात त्यांनी साधूसाठी वस्त्र, पात्र, भिक्षा, चातुर्मास हे सर्व नियम सांगितले आहेत. समजायला सोपे आहे. प्रथम भागात संक्षिप्त सूत्रे तर दुसऱ्या भागात मोठमोठी वाक्ये आहेत. आचारांगाचे श्रुतस्कंध वेगळे आहेत. तर सूत्रकृतांगाचे दोन्ही भाग एकमेकाला पूरक असून व पद्यमय भाग एकाच नाण्याच्या दोन बाजू आहेत, असे वाटते. मोठमोठी वाक्ये असली तरी सर्व अर्थपूर्ण आहेत.

उपसंहार :

वैदिक परंपरेत उपनिषदांचे जे स्थान आहे ते जैन परंपरेत सूत्रकृतांगाचे आहे. इतरांचे विचार देताना त्यांचे जैनीकरण केले नाही. यात जैनांच्या मनाचा प्रांजळपणा दिसतो. सूत्रकृतांगाच्या चर्चा जेवढ्या ज्ञानाच्या बाजूने जातात तेवढ्याच व्यवहाराच्या बाजूनेही जातात. पुस्तकीज्ञान हेच केवळ ज्ञान नसून, व्यवहारज्ञान हेही ज्ञान असल्यामुळे नागरिकशास्त्राचे वेगळे धडे देण्याची गरज जैनांना एका अर्थाने नाहीच.

(२०) सूत्रकृतांग (२) : एक चिंतनसप्तक

अर्जुन निर्वाण

सूत्रकृतांगाच्या दुसऱ्या श्रुतस्कंधात एकूण सात अध्ययने आहेत. यातील काहीशा वेगळ्या वाटणाऱ्या गोष्टींचा अध्ययनक्रमाने केलेला हा विचार -

१) **पुंडरिक अध्ययन** - एका सरोवराच्या मध्यभागी असणाऱ्या सुंदर कमळाच्या प्राप्तीसाठी चारही दिशांनी आलेल्या पुरुषांनी केलेले प्रयत्न व त्यांना त्यात आलेले अपयश. तर एका भिक्षूने केवळ तीरावर उभे राहून आवाह्न करताच, त्या कमळाचे स्वतःहून त्याकडे जाणे असा हा दृष्टांत.

या दृष्टांतात आजच्या आधुनिक 'व्यवस्थापन शास्त्रातील' काही रहस्ये दडलेली आहेत, असे मला जाणवले. 'जो उत्कृष्टतेचा ध्यास घेतो, त्याचे ध्येय आपणहून त्याकडे येते', असा संदेश यात दिलेला दिसतो. परंतु त्यासाठी 'न थकता अविरत परिश्रम करण्याचा मंत्रही जपायला हवा, याचे दिग्दर्शनही यात आढळते. व्यवस्थापन शास्त्रातल्या विद्वानांनी या भूमिकेतून हे अध्ययन अभ्यासायला हवे.'

२) **क्रियास्थान अध्ययन** - पहिल्या अध्ययनातील ध्येयप्राप्तीच्या दृष्टीने केलेले प्रयत्न म्हणजे 'क्रियास्थान' अध्ययनातील 'कर्माचे प्रकार'. यातही भर दिलेला आहे तो वाईट क्रियास्थानांवर. असे का असावे ? -

कोणाही व्यक्तीला भुरळ पडते ती अशा इतरांचे अप्रिय होणाऱ्या गोष्टींची. त्यातून कदाचित आसुरी समाधान मिळत असावे. उदा. दूरदर्शनवरील सर्व महिलाप्रिय मालिका, गुन्हेगारीविषयक बातम्या इ. याचा दूसरा पैलू असाही असू शकतो की माणसाला त्याच्या वाटेवरील अडचणी, अडथळे, खाचखळगे यांची कल्पना द्यावी, जेणेकरून मार्गक्रमण करणे सुलभ व्हावे.

३) **आहारपरिज्ञा** - सर्व जीव कोणता आहार करतात हे सांगताना येथे वनस्पतिकायिकांचे सविस्तर वर्गीकरण दिले आहे. केवळ निरीक्षणातून ही शास्त्रीय माहिती आपल्यापुढे त्यांनी ठेवली आहे. आजच्यासारखी उपकरणे त्याकाळी उपलब्ध असती तर त्यांचेही अजून अधिक सविस्तर वर्गीकरण केले गेले असते. पण आहे तीही माहिती अत्यंत मौलिक व अभ्यासपूर्ण वाटते.

आजच्या वनस्पतिशास्त्रज्ञांनी, जीवशास्त्रीय जाणकारांनी, भूगर्भशास्त्रज्ञांनी याचा अभ्यास करून त्यातील शास्त्र पुढे आणले पाहिजे. तसेच सर्व जीव हे सचित्तच आहार करतात हेही ठामपणे सांगून, आपल्या भ्रामक समजुतींना एक निश्चित धक्का देऊन, विचारप्रवृत्त केले आहे हे नक्की.

४) व ५) **प्रत्याख्यानक्रिया अध्ययन व नालंदीय अध्ययन** - 'प्रत्याख्यान' ही महावीरांची जैनदर्शनाला दिलेली मोठी देणगीच म्हणावी लागेल. प्रायः 'सर्वच जीव अप्रत्याख्यानी असतात', असे सांगून दोषांसकट सर्व संसारी जीवांचा स्वीकार केलात, हेच आपले मोठेपण. पण जीवांची सार्वयोनिकता असल्यामुळे पार्श्वपत्यांना प्रत्याख्यान विरोधाचे हत्यार मिळाले. हा अंतर्गत संघर्षदेखील समर्थपणे हाताळला.

श्रावकाचारातही प्रत्याख्यानाचे महत्त्व तर्कदृष्ट्या पटवून देऊन त्याचे सुस्थापन केले व ते इतके दृढ झाले की आज ते दैनंदिन जीवनात रुळून गेले.

६) **आचारश्रुत अध्ययन** - साधूंच्या वाक्संयमाचा उल्लेख करताना तो केवळ त्यांचा न राहता, सर्व मानवांना लागू पडतो. कारण आजच्या अतिसंवेदनशील युगात बोलण्यावर लगाम घातला नाही तर काय घडते, हे पदोपदी आपण अनुभवत आहोत. सामाजिक शांतता व सलोख्यासाठी वचनगुप्तीचे महत्त्व अनन्यसाधारण आहे.

७) आर्द्रकीय अध्ययन – समवशरणमधील वेगवेगळ्या मतप्रवाहातील काही संप्रदायांच्या विचारधारांनी, जैनांना दिलेले आवाहन यात दिसून येते. महावीरांना कधीही न पाहिलेल्या आर्द्रकाला, आपल्या संप्रदायात सामील करण्यासाठी गोशालक, बौद्ध, वैदिकब्राह्मण, सांख्यश्रमण व हस्तितापस यांचे प्रयत्न. त्यातही महावीरांचा सहवास लाभलेला गोशालक महावीरांवर जास्त प्रकाश टाकतो. इतर अन्यमती मात्र आहारचर्चेतच अडकून राहतात, ही यातील मोठी उणीव दिसते. पण अन्यमतावलंबियांच्या मतांचा जसाच्या तसा उल्लेख करणे, यात जैनदर्शनाचा 'उदारमतवादी' दृष्टिकोण दिसून येतो, जो आपल्या वागण्यात आणला पाहिजे.

आचारांगाची सुरवात 'षड्जीवनिकाय व त्यांच्या रक्षणे' झाली तर सूत्रकृतांगाचा शेवट 'षड्जीवनिकायांच्या रक्षणेच' झाला आहे. अशा प्रकारे आचारांग व सूत्रकृतांगाच्या सर्व अध्ययनातून समता व अहिंसेचा अंतःप्रवाह झुळझुळत आहे. त्याला प्रत्याख्यानाची जोड देऊन दैनंदिन जीवनाचा एक भाग बनविण्याचे मोठे कार्य केले आहे. हाच आशय बाकीबाब (कविवर्य बा.भ.बोरकर) आपल्या सुंदर कवितेतून व्यक्त करतात. तो असा की -

'जीवन त्यांना कळले हो, मीपण ज्यांचे पक्व फळापरि, सहजपणाने गळले हो.'

(२१) पद्यमय 'आर्द्रकीय' अध्ययन

चंदा समदडिया

राजगृही एक नगरी होती सुंदर, सुविख्यात,
महावीरही होते तेथे विराजित.

(इराणहून) दर्शन करण्या आर्द्रक मुनि आले मित्रांसमवेत (५००)

अन्य दार्शनिक भेटले त्यांना प्रवेशद्वारात,
झाला जो संवाद, प्रकाशक स्वमत-परमत,
इतिहासाने नोंदवले ते सूत्रकृतांगात. (जैन उदारमतवादी)

(श्रमण परंपरेचे नवनिर्मित बौद्ध व आजीवक हे महावीरांचे प्रबल विरोधक आहेत.)

सर्वप्रथम गोशालक मांडतो 'आजीवक मत'
पण नाही सांगितले तत्त्व किंवा एकही सिद्धांत
(पूर्वपीठिकेसह गोशालकाचे आक्षेप ---)

आक्षेप - महावीर तर आहेत माझे पूर्वपरिचित,
साथी होतो मीही त्यांचा, साधना काळात.

ध्यान, मौन, तपःसाधना नि पूर्ण एकांत,
मम संग भोजन केले कितीदा, निरस अंत-प्रांत
सर्व सोडूनि आता दिसती नित्य समूहात,
जमवून जन समुदाया, यथेच्छ उपदेश देत.

पूर्वीचे नि आत्ताचे त्यांचे वागणे विपरीत.
द्विधा अवस्था होऊन त्यांचे झाले अस्थिर चित्त

आर्द्रक : उत्तर - (पूर्वी) कर्म निजरी हेतु केले तप नि एकांत,
प्रयोजन ना उरले आता, झाले रागद्वेष रहित.

कृतार्थ झाले महावीर करूनि, केवलज्ञान प्राप्त,
वर्तमानासह एकांतच ते, पुढे भविष्यात.

गोशालक : आक्षेप - नाही केला शिष्य एकही बारा वर्षात

आता हा हा म्हणता केले गोळा शिष्य सहस्रात
केवळ उपजीविकाप्राप्ति हेतु आहे उपदेश करण्यात,
कसे म्हणता तुम्ही नाही त्यांना मोह नि ममत्व ?

आर्द्रक : उत्तर - उपदेशाचे कारण एकच 'भव्य जीव हित',
मार्ग हिताचा ऐकून सारे होतात प्रव्रजित
भाषेच्या गुणांनी नटले प्रवचन निर्ग्रंथ
मार्ग 'अहिंसामय संयम' हा सांगति अरिहंत
पाहून ठरवति जनसमुदाया दृष्टिक्षेपात
होईल अथवा नाही सार्थक सांगूनि स्व-मत
व्यवहारास्तव केले काही तरी नाही बिघडत
कर्मबंध, वेदन, निर्जरा तीनच समयात.

केवलज्ञाना सत्यस्वरूप जे झाले अवगत,
त्रस-स्थावर जीवांना पाहिले, सर्व विश्वव्याप्त.
यथावादी-तथाकारी ज्ञातपुत्र होऊन परार्ध प्रवृत्त
शिथिलाचारी धर्मा केले पुनः परिष्कृत
ब्रह्मचर्य नि अपरिग्रहास करून विभक्त
व्यवस्था दिली साधु, श्रावका - महाव्रत, अणुव्रत.

गोशालक : आजीवक मताचे चारित्र-वर्णन
स्व-मताचे करण्या वर्णन गोशालक झाला उद्यत,
वर्णन केले चारित्राचे रहस्य उलगडत
सेवन करतो आम्ही बीजकाय, आधाकर्मी, सचित्त जलशित
(इतकेच काय ?) स्त्री-सेवन करून ही आम्ही पापलेप रहीत.

आर्द्रक : उत्तर - आर्द्रक मुनि ही उत्तरले मग परखड भाषेत (शब्दांत)
भिक्षु तर सोडाच तुम्हा, गृहस्थही नाही म्हणवत
अणुव्रती त्या गृहस्थासही परस्त्री वर्जित
म्हणे, आतापन, तप, अस्नानाने होते कर्म निर्जरीत ?
अशा युक्तिवादाने तर, अज्ञानच तुम्ही करता प्रस्तुत
उपजीविकेसाठी कशास फिरता भिक्षा मागत ?
व्यर्थ भिक्षुकी केली तुम्ही सोडूनि गणगोत
अहो ! भिक्षेचा हेतु सर्वथैव विरमण प्राणातिपात.

(गोशालक - तुम्ही आमची निंदा करता.)

आर्द्रक : उत्तर - बाह्यरूप, वेषाची आम्ही निंदा नाही करत
(पण) दृष्टिच असे जर मिथ्या कसा होईल बरे दुःखांत
सम्यक् दृष्टि महावीरांना दूषणे देत,
सिद्धच केले तुमचे मत, कसे 'मिथ्या संस्थित'

गोशालक : आक्षेप -

विद्वानांमध्ये प्रश्नोत्तर नि शास्त्रचर्चेला महावीर भीतात,
पराजित जर केले कोणी तर होऊ लज्जित

आर्द्रक : उत्तर – कामकृत्य नि बाळकृत्य ते नाहीच हो करीत
स्वमर्जीचे मालक महावीर कुणा नाही भीत
शास्त्रार्थाने केले निरुत्तर सगळे पंडित (११ गणधर)
अविभाज्य त्या प्रश्नोत्तराने शेकडो झाले निश्चित
ध्येय एकचि उपदेशाचे भव्य जीव हित
परोपकारा धर्म सांगती ज्ञानी भगवंत
स्वच्छंद विहारी पक्ष्यासम अप्रतिहत विचरत
देवाज्ञा वा राजाज्ञेला नाही ते भीत (जीय भयाणं)

गोशालक : हरले सारे युक्तिवाद मग झाला संभ्रांत
हळूच टाकला खडा हिणवूनि महावीरा 'वणिक' म्हणत
(तुमचे महावीर) वणिकांमध्ये राहून झाले पक्के वणिकजात
रात्रंदिन नफ्याचाच (लाभाचा) विचार असता मनामानसात

आर्द्रक : उत्तर – एकांशाने खरे आहे रे गोशालका हे तुझे मत
लाभार्थी तर आहेतच मुळी महावीर भगवंत
रत्नत्रयाच्या मोक्षमार्गाचे जाणून गुपित
भविजीवांच्या कल्याणार्थ, या रहस्याचा उपदेश अविरत

वणिक कसा असतो ---

आरंभ परिग्रह सावद्य कर्म हे व्यापारी तंत्र
उपजीविका नि कामेच्छेचा हा वैश्य मूलमंत्र
प्रेमरसामध्ये होऊन लुब्ध करती धनप्राप्त
लयास जातो क्षणिक विकास हा थोड्या अवधित
अशा व्यापाराने होतो मग मात्र आत्मा दंडित
चतुर्गतिच्या चक्रामध्ये फिरतो अविरत.

महावीर कसे आहेत ---

वणिकासम सावद्यकर्मेही नाही ते करत
नवीन कर्मांचे नाही उपार्जन, पूर्व कर्म अंत.
महावीरांचा आत्मविकासही सादि-अनंत,
जन्म-मरणरूप संसाराचा केला हो अंत
स्वहेतु निरपेक्ष व्यापाराने साधति परहित
सर्वांशाने वणिक-महावीर तुलना नाही रे होत.

(गोशालक खजिल होऊन दूर जातो. आता बौद्ध भिक्षु येतो.)

बौद्ध भिक्षु - शाक्य : (बौद्ध भिक्षुचा युक्तिवाद)

पुरुषास मानुनि खळीपिंड, बालकास तुंबा मानत,
केला असा मांसाहार, तरी कर्मबंध नाही होत.
शुभाशुभ बंधाचे कारण, कुशल अकुशल चित्त,
प्रत्यक्ष बुद्ध पण पवित्र समजून, असा आहार घेत
(नर) मांस भक्षणाने आम्हा दोष नाही लागत,
म्हणून करतो शाक्य भिक्षु, मांसाहार मनसोक्त.

दोन हजार भिक्षुंना जो नित्य भोजने देत
महान पुण्योपार्जनासह, होते उच्च देवगति प्राप्त.
आर्द्रक : सर्व ऐकुनि आर्द्रक म्हणतो खिल्ली उडवत
आदर्शच आहे तुमची दृष्टि नि आदर्श आहे मत
म्हणूनच झाला प्रसार तुमचा पूर्वेपासून पश्चिमेपर्यंत
(भोजन देण्याचा) सोपा आहे उपाय तुमचा पण आम्हा नाही पटत
जर असेल दाता असंयमी, नि रुधिर लिप्त हात
कशी होईल बरे भोजने देऊनि देवगति प्राप्त ?
पापकारी प्रवृत्तिचा हा सिद्धांत केवळ अयोग्य, अनुचित
(शिवाय) इहलोकी होते निंदा, परलोकी अनार्य जन्मजात
रसलंपट अनार्यच तुम्ही भिक्षुच नव्हेत !
आर्हत धर्माप्रमाणे : संयमी, विवेकवान पुरुषा असतो हिंसा त्याग समस्त
त्रस-स्थावर जीव संयमाचा आमचा धर्म, परंपरागत.

(बौद्ध भिक्षु जातात)

सांख्य - मत

परिव्राजक : जैन, बौद्ध नि सांख्यांचेही एक उगम स्रोत
सांख्यांनी मग केली सलगी 'भाऊ, भाऊ' म्हणत
आचार धर्म समान आपला, अहिंसेस मानून केंद्रिभूत
व्रत, यम, नियम, लक्षण धर्मात, आपण दोघेही स्थित
जैन नि सांख्य, समानतेचे मुद्दे, मांडुनिया सात
घेऊ पाहिला आर्द्रक मुनिंचा त्याने हातात हात

(हात सोडवत)

आर्द्रक : उत्तर - अकर्ता पुरुषास मानुनि निष्क्रिय मानत
पंच स्थावरा जड मानुनिया म्हणति महाभूत
आत्मा आहे सदैव नित्य, (पर्यायही) नाही बदलत
मानले असे तर येतीलच ना अडचणी अनंत
जो जसा तो तसाच राहिल त्याच अवस्थेत,
(तर) पुनर्जन्म, गति, जातिस काही अर्थच नाही उरत.

(सर्व श्रमण परंपरेचे विरोधक गेले.)

वेद प्रामाण्य मानणारे ब्राह्मण, संन्यासी मत
(माझे ऐका) आजीवक, बौद्ध, आर्हत हे सारे वेदबाह्य मत
उद्धार कधी ना होईल याने आहे वेद कथित
दोन हजार ब्राह्मण स्नातकांना जो सदक्षिणा अन्नदान देत
महान पुण्योपार्जनसह होते स्वर्गगति प्राप्त.

(स्वगत - कसल्या स्वर्गाच्या बाता करताय ?)

आर्द्रक : उत्तर - मांसलोलुप मार्जारासम घरोघरी भटकत,
भोजनलोलुप ब्राह्मणास होते नरकगति प्राप्त !

(असे ब्राह्मणास निरुत्तर केले.)

हस्तितापस - मत

श्रुति, स्मृति विहितच आहे, आमचा सिद्धांत
तप, आतापन युक्त चर्चा आमची सिद्धांतानुमोदिन
अल्प हिंसेने अनेक जीवांना अभयदान देत
उपजीविकेसाठी करतो आम्ही एकच महागज घात
ऐकून सारे आर्द्रक मुनिही झाले व्यथित
अज्ञान, अंधश्रद्धेची ही पाळेमुळे किती खोलात !
आर्द्रकाने फक्त एवढेच उत्तर दिले, खेदजनित शब्दात

(कोणत्याही परंपरेचा असो)

भिक्षुंना तर अल्प हिंसाही नाही कल्पत
जैन मते 'नरकाचे कारण' पंचेंद्रिय घात
(गोशालक-आर्द्रक चर्चा प्रदीर्घ पंचवीस श्लोकात
पुढे पुढे आर्द्रकाने उत्तरे दिली थोडी संक्षिप्त)

उपसंहार :

बधले नाही आर्द्रकमुनिही होते ठाम मत
तार्किक नि तात्त्विक उत्तरे दिली प्रशस्त
निर्ग्रंथ प्रवचना धारे केले सर्वांपरास्त
महावीरांप्रत जाऊन झाले सर्व प्रव्रजित.
महावीर काळी भारत होता दर्शनश्रीमंत
३६३ मत-मतांतरे सूत्रकृतांगात
खाणच आहे धर्माची जणू आपला भारत
आजही होती धर्म हजारो येथे प्रसृत
दर्शने ही किती आली गेली या कालौघात
'सत्यधर्माला नाही आदि नि नसतो हो अंत.'
म्हणू या आपण सारे मिळूनि एका स्वरात
सत्यधर्म प्ररूपक जय जय महावीर भगवंत.

(२२) मला भावलेले आचारश्रुत

लीना संचेती

परिवर्तन हा निसर्गाचा नियम आहे व आजचे युग हे व्यावहारिक व वैज्ञानिक युग आहे. विज्ञानात कार्य-कारण-भाव (cause-effect-relation) असल्याने आपले म्हणणे पटवून देण्यात तो यशस्वी झाला आहे. तरीसुद्धा सत्कार्यवाद व असत्कार्यवाद ह्या दोन दृष्टिकोनांमुळे काही गोष्टी विज्ञानाला सुद्धा गृहीतच मानून चालाव्या लागतात.

दार्शनिक जगात जेथे जेथे ज्ञान व सम्यक्त्वाचे वर्णन येते तेथे तेथे आचाराचेही वर्णन येतेच. सूत्रकृतांगाच्या दुसऱ्या श्रुतस्कंधातील 'आचारश्रुत' अध्ययनात आचार-अनाचार, नवतत्त्व, षट्द्रव्य याविषयी चर्चा तर आहेच पण त्याचबरोबर अनेकांतवादी दृष्टिकोणाची सीमारेषा व वाणीचा विवेक हेही या अध्ययनाचे वैशिष्ट्य आहे.

आचारश्रुत अध्ययन आवडण्याचे कारण असे की, यात विज्ञानासारखी अनेक कृत्ये, Theory of Relativity

सारख्या अनेक संज्ञा आहेत. परिभाषा जरी वेगळी असली तरी साम्यही आहे. 'शून्यवाद', 'मायावाद' या गोष्टी जैनांना मान्य नाहीत. सूत्रकाराने यात अस्तित्वातील आधारभूत तत्त्वांवर, 'साधूंनीच काय तर कोणत्याही सामान्य व्यक्तित्तेनेही एकांगी विचार करू नये', अशा गोष्टींची यादी जोडीरूपाने दिली आहे. भ. महावीरांनी 'इइ दिष्टिं न धारए', 'इति वायं न नीसरे' - अशा प्रकारे कोणती दृष्टी धारण करावी व कशाप्रकारे वाणीचा संयम ठेवावा, यावर दिलेला भर दिसून येतो.

जगातील सगळ्या भूमिती या मानवी मनाच्या संज्ञा आहेत. 'लोक-अलोक' मधील कोणाच्याही नजरेत न बसलेले 'अलोक' अस्तित्वात आहे व ही संकल्पना जैनांनीही मानली आहे. केवळ 'जीवा'लाच श्रेष्ठत्व न देता 'अजीवा'लाही तेवढेच महत्त्व देणारे जैनच होत. 'धर्म-अधर्मा'ला गती-स्थितीशील मानून आजच्या भौतिकशास्त्रातला जवळचा सिद्धांत मांडलेला आढळतो. व्यावहारिक जीवनात 'मोक्षाएवढेच' 'बंधनालाही' महत्त्व दिले आहे. आयुष्यभर बंधनात राहणारी मानसिकताही खरीच आहे व त्यापलीकडचा 'मोक्ष' म्हणजे सुटका, हीही तेवढीच महत्त्वाची आहे. नैतिक दृष्टिकोनाच्या संकल्पनेतून जैनांची अठरा 'पापस्थाने' व नऊ 'पुण्यांची' संकल्पना जगात सर्वमान्य आहे, हे मात्र दिसत नाही. उलट जे आपल्या वाट्याला आले आहे, ते प्रामाणिकपणे पार पाडणे, हा मोठा नैतिक सदगुणच सर्वमान्य आहे. ही नीतिमूल्ये आचरणात आणताना व्यावहारिक गरजा वाढविणे म्हणजे 'आस्रव' व त्या कमी करणे म्हणजे 'संवर'च होय.

आचारश्रुत अध्ययनात 'वाक्-संयमा'लाही खूप महत्त्व दिले आहे. येथे 'सापेक्षतावाद' खूप लागू पडतो. शंका उत्पन्न करणाऱ्या काही गोष्टींची विधाने करू नयेत, तर काही विधाने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावाप्रमाणे न लावता, दैनंदिन व्यवहाराप्रमाणे लोककथन करण्याकडे महावीरांचा ओढा दिसतो. तसेच काही अंतर्मुख करणाऱ्या गोष्टी सामूहिक नसून वैयक्तिक असतात. जसे - मुक्ती, मोक्ष, केवलज्ञान, अगदी एकटेपणासुद्धा.

सूत्रकृतांगातील वैचारिक उदारमतवाद, सर्व जगाकडे पाहण्याची दृष्टी या श्रुतस्कंधात आढळते. सामुदायिक प्रवचनातून दिसलेला भावनिक पावित्र्याचा मूळ गाभा कायम ठेवून, 'काळानुसार परिवर्तन', हा जैनधर्माचा स्वभाव जाणवतो. 'आपण उच्चारलेले प्रत्येक वाक्य हे एकांगी सत्य असू शकते', हा सापेक्षतावाद मनात घर करून गेला. सत्याला पाहण्याच्या दृष्टिकोणाचे अनेक अंश दिसून आले. व्यक्त करणाऱ्या शब्दाला मर्यादा आहेत हा सापेक्षतावाद दुसऱ्या अर्थाने अनेकांतवाद म्हणजे खुले मन. सत्य हे अत्यंत व्यामिश्र आहे.

काही गोष्टी तात्कालिक असतात तर काही त्रैकालिक सत्य असतात. वचनगुप्तीचे पालन कसे महत्त्वाचे व जाहीर प्रतिक्रिया कशी घातक असू शकते, हीदेखील या अध्ययनातून मिळालेली जाणीव होय. 'असेल', 'असू शकेल' किंवा 'असेलही कदाचित्' - अशी स्वतःला समजवण्याची ताकद मिळाली.

अनेकांतवाद हे केवळ धर्मतत्त्व नसून ते आयुष्यात प्रत्यक्ष व्यवहारात उतरवण्याचे तत्त्व आहे. हाच सापेक्षतावाद, हाच अनेकांतवाद, हीच बौद्धिक उदारता व सहनशीलता माझ्यातही यावी हीच भावना !!!

निबंधस्पर्धा वृत्तांत आणि स्पर्धकांचे अभिनंदन
(जैन अध्यासन आणि सन्मतीच्या संयुक्त विद्यमाने)

डॉ. नलिनी जोशी

ऑक्टोबर महिन्यात जैन अध्यासन आणि सन्मति-तीर्थच्या संयुक्त विद्यमाने निबंधस्पर्धा जाहीर करण्यात आली. सन्मति-तीर्थच्या शिक्षिकांनी ती स्पर्धा त्यांच्या विद्यार्थ्यांपर्यंत पोहचविली. पुण्यातील काही मंदिरे व स्थानके यातही पत्रक लावले गेले. 'जैन जागृति' मासिकात तत्संबंधी निवेदन देण्यात आले. या सर्वांचा परिणाम म्हणून निबंधस्पर्धेसाठी एकूण ३९ निबंध आले.

निबंधाचा विषय होता : एक अजनबी को जैन धर्म से कैसे परिचित करें ?

: एका अनभिज्ञ व्यक्तीस जैन धर्माची ओळख कशी कराल ?

: Introduction of Jainism to a Layman

पुणे आणि उपनगरातून सर्वात जास्त प्रतिसाद मिळाला. पुण्यातून डेक्कन जिमखाना, शिवाजीनगर, कोथरूड, मार्केटगार्ड, धनकवडी, बिबवेवाडी, कात्रज येथून निबंध आले. हडपसर, खडकी, चिंचवड आणि पिंपरीतूनही प्रतिसाद मिळाला. चिंचवडचा प्रतिसाद लक्षणीय होता. त्याखेरीज अहमदनगर, औरंगाबाद, सातारा, कोल्हापूर, सांगली, लोणी (ता.राहता), कडा (ता.आष्टी) आणि अंधेरी (मुंबई) येथून जो अनपेक्षित प्रतिसाद मिळाला त्याचे श्रेय 'जैन जागृति' मासिकाला द्यावे लागेल.

निबंधाच्या निमित्ताने जैन जनमानसाचा कानोसा घेता आला. नवीन परिभाषेत हा एक 'sample-social-survey' ठरला. 'आत्ताच्या जैन समाजाची आपल्या धर्माकडे बघण्याची दृष्टी कशी आहे ?'-ते या निमित्ताने कळले.

'अजनबी' किंवा 'अनभिज्ञ' या शब्दाचे खूप वेगवेगळे अर्थ स्पर्धकांनी लावले. त्यातील विविधता आणि प्रतिभा फारच लक्षणीय होती. काहींनी पाश्चात्य देशातल्या ख्रिश्चन धर्मीयांना जैन धर्म सांगितला. काहींनी हिंदुधर्मातले आपले मित्र किंवा मैत्रिणी निवडल्या. आपण स्वतः जैनधर्मीय असूनही 'अजनबी'च आहोत असे गृहीत धरून काहींनी साधु-साध्वींकडून प्रवचनातून माहिती घेतली. एका महिलेने आपल्याच १०-१२ वर्षांच्या स्मार्ट, तरतरीत मुलाशी संवाद साधला, तोही अतिशय सोप्या भाषेत. कोणी आपल्या शेजारच्या अ-जैन युवकांना आठवडाभर संध्याकाळी अर्धा तास जैन धर्मातली वैज्ञानिक तथ्ये समजावली. एका लेखिकेने असे रंगविले की ती दिवसभर आपल्या ब्राह्मण मैत्रिणीकडे गप्पा मारायला जाते. सकाळपासून संध्याकाळपर्यंत घरात, बागेत जे जे प्रसंग घडतात ते ध्यानी घेऊन तिने वेळोवेळी उद्बोधन केलेले दिसले. एका लेखिकेने गांधी जयंती साजरी करणाऱ्या समूहाला 'जैनविद्या' या विषयाची सर्व अंगे समजावून सांगितली.

मुंबईच्या एका निबंधातील हस्ताक्षरावरून कळत होते की जुन्या मराठी वळणाचे हे हस्ताक्षर नक्की ८० वर्षांच्या घरातील गृहस्थाचे आहे. सांप्रत काळ 'महावीरतीर्था'चा असल्याने त्यांनी महावीरांचे सुलभ चरित्र श्रोत्यांना सांगून अखेरीस जैन धर्माचा सोपा उपदेश त्यांच्या तोंडून समजावून सांगितला. क्लिष्ट, पारिभाषिक अशा सर्व संकल्पना टाळल्या. त्या प्रचलित बोलीभाषेत सांगितल्या.

आपल्या धर्माची ओळख करून देण्यासाठी कोणकोणते मुद्दे घेतले पाहिजेत याची चांगली जाण एकंदरीत बऱ्याच स्पर्धकांमध्ये दिसून आली. लोकसंकल्पना, कालचक्र, तीर्थकर, षड्-द्रव्ये, नव-तत्त्वे, कर्मसिद्धांत, अनेकांतवाद, साधु-आचार, श्रावकाचार, १२ तपे, अनुप्रेक्षा, शाकाहार - यातील अनेक मुद्यांचा निबंधात समावेश केला गेला.

'अनभिज्ञ' व्यक्ती तर्कशुद्ध विचार करणारी, जैन समाजाचे सामान्यतः निरीक्षण करणारी आणि परखड प्रश्न विचारणारी असू शकते. हे सर्व गृहीत धरून ज्यांनी अधिक चिकित्सकपणे प्रश्नोत्तररूपाने मांडणी केली ते प्रथम

पारितोषिकास पात्र ठरले. प्रथमच जैन तत्त्वज्ञानात शिरणाऱ्याला किती खोलवर पाण्यात नेता येईल याचे भान ज्यांनी ठेवले तेही पारितोषिकास पात्र ठरले. अनभिज्ञ व्यक्तीला कोणत्या प्रसंगी, किती कालावधीत जैन धर्माची तोंडओळख करून देता येईल त्याविषयी यशस्वी स्पर्धकांनी चांगली कल्पनाशक्ती वापरली. अतिशय वस्तुनिष्ठ आणि निरपेक्षतेने लावलेल्या रिझल्टबाबत स्पर्धक समाधानी राहतील अशी अपेक्षा करते.

पारितोषिक-प्राप्त विद्यार्थी सोडून इतरांनी कशी मांडणी केली आहे त्यावर थोडे भाष्य करणे आवश्यक आहे त्यातील मुद्दे साधारणपणे असे आहेत -

- * जैन धर्माची अतिरिक्त स्तुती आणि महिमा.
- * जैन कुटुंबात जन्म हे केवढे भाग्याचे लक्षण आहे - याचे पानभर वर्णन.
- * समोरच्याचे धर्मांतर करून जणू जैनच बनवावयाचे आहे असा अड्डाहास.
- * आपल्याला जी जी माहिती आहे ती सर्व निबंधात कोंबली पाहिजे - असा दृष्टिकोण.
- * अत्यंत आकर्षक सुरवात आणि नंतर अतिशय क्लिष्ट माहिती निवेदनासारखी.
- * दहा फुलस्केपची मर्यादा विषयविस्तारानुसार वापरण्याचा अंदाज न आल्याने अचानक अधांतरी केलेला शेवट.

* अनावश्यक गोष्टींवर निष्कारण भर - उदा. 'मुहपती का लावावी ?' याचे पानभर वर्णन. स्वयंपाकघरात वर्तमानपत्र वापरल्याने अक्षरज्ञानाची आशातना होते - हा एकच मुद्दा खूप लांबलेला असणे ; २४ तीर्थंकर, शलाकापुरुष यांची नामावली ; साधुधर्म आणि श्रावकधर्मातील सर्व व्रते-अतिचार यांचे कंटाळवाणे (अनभिज्ञ व्यक्तीस नक्कीच) वर्णन ; महावीरचरित्र सांगताना, 'त्यांनी विवाह करणे का नाकारले' या गोष्टीवर फार भर आणि उपदेश त्रोटक देणे.

थोडक्यात काय, तर कोणते मुद्दे निवडायचे आणि कोणते गाळायचे हा विचार निबंधलेखनापूर्वी करून ज्यांनी नीट नियोजन केले, त्यांचे निबंध चांगले ठरले. तरीही दहा फुलस्केप लिहिणे काही सोपे काम नाही. सर्वच्या सर्व ३९ निबंधलेखकांचे त्याबद्दल अगदी मनापासून अभिनंदन !

या निमित्ताने निबंधात मांडलेल्या काही विशेष गोष्टी येथे नमूद करते -

१) कल्चरल एक्सचेंज प्रोग्राम द्वारा 'जेनेलिसा' नावाची मुलगी लेखिकेकडे राहिली. सतत प्रश्नांचा भडिमार करणारी ही चोखंदळ मुलगी. लेखिकेने अखेरीस तिचा नामकरण विधी केला आणि नवे नाव ठेवले 'जिज्ञासा'.

२) एक लेखिका 'अजनबी'ला जैन धर्म सांगताना स्वतःच अंतर्मुख होते आणि स्वतःच्या जैनधर्मी असण्याचा पुनर्विचार करू लागते.

३) कौटुंबिक, सामाजिक आघातांनी त्रस्त झालेली एक अ-जैन स्त्री आत्महत्येच्या निर्णयापर्यंत पोहोचते. आपली श्रावक लेखिका तिला साध्वीर्जीकडे नेते. त्यांच्या उपदेशाने ती स्त्री साध्वीदीक्षा घेते. ही हृदयस्पर्शी सत्यघटना एका निबंधात चांगल्या प्रकारे नोंदविली आहे.

४) पर्युषणाचा अंतिम दिवस आहे. आलोक्येला अलोट गर्दी झाली आहे. रस्त्यात थांबून एक जैनेतर स्त्री आपल्या लेखिकेला विचारते, 'यहाँ कुछ फ्री में मिल रहा है क्या ? इतनी भीड़ क्यों है ?' लेखिका मोठी चतुर. ती तत्परतेने उत्तर देते - 'यहाँ मुफ्त में क्षमा मिल रही है । मेरे साथ अंदर चलो ।' मांगलिक घेऊन श्राविका त्या स्त्रीला घरी नेते. जैन धर्माची ओळख करून देते.

५) लेखिका एका व्यक्तीच्या संथाऱ्याच्या दर्शनासाठी चालली आहे. ट्रेनचा प्रवास सुरू आहे. एक समवयस्क जैनेतर स्त्री गाडीत चढते. शेजारी बसते. तिचे वडील गंभीर आजारी असतात. लेखिका संथाऱ्याविषयी समजावून सांगते. दुसरी स्त्री प्रतिक्रिया देते - 'खाना नहीं, पीना नहीं, दवा नहीं । जानबूझकर आदमी को मरने के लिए छोड़ देनेका कैसा धर्म है ये ?' त्यानंतर लेखिका जैन धर्म समजावते.

६) केवळ एकाच निबंधात हा मुद्दा विस्ताराने मांडला गेला. लेखिका म्हणते, 'झाडावेलींवर आपल्या

मुलाबाळांप्रमाणे प्रेम करणारे जैन अगदी अल्प आहेत. पर्यावरण वाचवण्याचा उत्तम उपाय म्हणजे झाडे वाचवा, जगवा. पाणी अडवा, जिरवा.'

७) जैन रामायणातला प्रसंग. सीता लवकुशांसह आश्रमात रहात आहे. स्वयंपाकासाठी लाकडे हवी आहेत. सीता मुलांना सांगते - 'लाकडे तोडण्यापूर्वी झाडांची क्षमा मागा. फक्त वाढलेल्या फांद्या हळुवार तोडा.'

८) बहकत चाललेल्या नव्या पिढीचा विचार करताना एका लेखिकेसमोर कुमारवयीन मुलामुलींच्या ओल्या पाठ्यांचा प्रसंग उभा राहतो. नैतिक आणि धार्मिक संस्कार नसलेल्या आईवडिलांविषयी लेखिका लिहून जाते - 'आपल्या पाल्याबरोबर वत्सलतेचा, ममतेचा गंध-स्पर्श न ठेवणारे आईबाप आज आहेतच ना ?' त्यानंतर लेखिका जैन धर्माची नैतिक दृष्टीने मांडणी करते.

९) एका कल्पक लेखिकेने यमलोकी गेलेल्या जीवाचा/आत्म्याचा, यमराजाबरोबर झालेला संवाद नमूद केला आहे. त्यातील 'यमराज' हा आयुष्यकर्माचे प्रतीक म्हणून घेतला आहे. मोबाईलवर बोलत गाडी चालवताना 'महावीरसेन पार्श्वनाथ जैन' नावाच्या युवकाचा मृत्यू झाला आहे. यमराज त्याला जैन धर्मातील 'ईर्यासमिति' आणि 'अप्रमाद' यांचे महत्त्व समजावून सांगतो. पुढील जन्मी पुन्हा जैन धर्मात जन्म घेऊन काळजीपूर्वक जगण्याचे आश्वासन तो युवक देतो. लेखिकेच्या कल्पनाशक्तीला जरूर दाद दिली पाहिजे.

निबंधाच्या निमित्ताने जैन श्रावकवर्गाच्या अंतरंगाचे जे दर्शन झाले ते खरोखरच हृदयस्पर्शी आहे.

* पारितोषिक प्राप्त व्यक्तींची यादी *

अ) प्रथम पारितोषिक - रु. १०००/- (प्रत्येकी)

१) शोभा गुंदेचा २) शीतल भंडारी ३) सुमतिलाल भंडारी

ब) द्वितीय पारितोषिक - रु.७५०/- (प्रत्येकी)

१) आशा कांकरिया २) चंदा समदडिया

क) तृतीय पारितोषिक - रु.५००/- (प्रत्येकी)

१) शुभांगी कात्रेला २) डॉ. नयना भुरट

ड) उत्तेजनार्थ पारितोषिक - रु.२५०/- (प्रत्येकी)

१) चंचला कोठारी २) आर्.डी.मुणोत ३) स्नेहल छाजेड

४) मनीषा कुलकर्णी ५) सविता मुणोत ६) चंदनबाला बोरा

सर्व यशस्वितांचे हार्दिक अभिनंदन !!!

परिक्षकांच्या वस्तुनिष्ठतेवर कृपया पूर्ण विश्वास ठेवावा ही नम्र विनंती.

मराठी भाषेचे अभिजातत्व
(‘जैन महाराष्ट्री’ साहित्याच्या विशेष संदर्भात)

डॉ. नलिनी जोशी

(मराठी भाषा विभाग, मंत्रालय, मुंबई यांच्या आवाहनाला अनुसरून लिहिलेला शोधलेख)

(१) विश्वातील भाषांचे वर्गीकरण – त्यामध्ये ‘प्राकृत’ भाषांचे स्थान :

आज उपलब्ध असलेल्या सुमारे २००० मुख्य भाषांना, भाषाशास्त्रज्ञांनी १२ गटांत विभागले आहे. भारतात प्रचलित असणाऱ्या प्राचीन, मध्ययुगीन आणि आधुनिक प्राकृत भाषा या बारांपैकी ‘भारोपीय’ (इंडो-यूरोपियन) या गटात समाविष्ट होतात. ‘भारोपीय भाषा’ या सामान्यतः १३ उपगटांत विभक्त केल्या जातात. त्यापैकी एक मुख्य गट ‘आर्य भारतीय’ (इंडो-आर्यन) भाषांचा आहे. भारतात ‘प्राकृत’ या नावाने ओळखल्या जाणाऱ्या भाषा या ‘आर्य-भारतीय’ भाषागटामध्ये समाविष्ट केल्या जातात.

आर्य-भारतीय भाषांचा विचार तीन काळांमध्ये विभागून केला जातो.

(१) प्राचीन आर्य-भारतीय भाषाकाळ : इ.स.पू. १६०० ते इ.स.पू. ६००

(२) मध्यकालीन आर्य-भारतीय भाषाकाळ : इ.स.पू. ६०० ते इ.स. १०००

(३) आधुनिक आर्य-भारतीय भाषाकाळ : इ.स. १००० ते आजपर्यंत.

मराठी भाषेचे अभिजातत्व सिद्ध करताना, आपल्याला वरीलपैकी दुसऱ्या काळाचा (इ.स.पू. ६०० ते इ.स. १०००) विशेष विचार करावा लागतो. हा काळही भाषाविदांनी तीन गटांत विभागला आहे. त्यापैकी दुसऱ्या गटाचा काळ आहे – इ.स. १०० ते इ.स. ५००. या काळात ज्या विविध प्राकृत भाषांमध्ये साहित्यिक प्रवृत्ती घडल्या, त्यात ‘महाराष्ट्री’ आणि ‘जैन महाराष्ट्री’ या भाषांचा समावेश होतो. त्याखेरीज मागधी, अर्धमागधी, पाली, पैशाची आणि शौरसेनी या भाषांमधील साहित्यही उपलब्ध आहे. परंतु आपल्या लेखाचा संबंध ‘महाराष्ट्री’ आणि ‘जैन महाराष्ट्री’शी असल्याने तेवढाच विचार करू.

(२) ‘महाराष्ट्री’ प्राकृतातील उपलब्ध साहित्य :

येथे नमूद केले पाहिजे की, भारताच्या नाट्यशास्त्रात (सुमारे इ.स.पू. २००) ‘महाराष्ट्री’ भाषेचा निर्देश नाही. (अध्याय १८, श्लोक ३५-३६) तथापि त्याच्या यादीतील ‘दाक्षिणात्या’ या नावाने ‘महाराष्ट्री’ भाषेचे सूचन होते – असा अनेक अभ्यासकांचा दावा आहे. कारण आजची ‘दाक्षिणात्य’ संकल्पना भारतापेक्षा वेगळी आहे. शिवाय त्याने उपभाषांमध्ये ‘द्राविडी’ भाषेचा स्वतंत्र निर्देश केला आहे. ‘दाक्षिणात्य’ या भाषेचे स्पष्टीकरण काही टीकाकार ‘वैदर्भी’ असे करतात, जो महाराष्ट्राचाच एक भाग आहे. महाराष्ट्री भाषेतील उपलब्ध साहित्य व त्यांचे काळ :

सेतुबंध – प्रवरसेन – इ.स. ५ वे शतक

गौडवध – वाक्पतिराज – इ.स. ७५० (८ वे शतक)

लीलावती – कौतूहल – इ.स. ८ वे शतक

श्रीचिह्नकाव्य – कृष्णलीलाशुक (केरळ-निवासी) – इ.स. १३ वे शतक

कंसवध, उषानिरुद्ध – रामपाणिवाद – (मलबार-निवासी) – इ.स. १७-१८ वे शतक

(३) ‘महाराष्ट्री’ साहित्यातील सातत्य दाखविण्यास ‘जैन महाराष्ट्री’ची मदत :

हर्मन याकोबी या जर्मन अभ्यासकाने प्रथमतः ‘जैन महाराष्ट्री’ ही संज्ञा वापरली. त्याच्या मते प्राचीन जैन आगमग्रंथ (धर्मग्रंथ) ‘जैन महाराष्ट्री’ भाषेत लिहिलेले आहेत. पुढे जैनविद्येच्या अभ्यासकांनी या मताचे खंड करून असे प्रस्थापित केले की सर्वाधिक प्राचीन श्वेतांबर ग्रंथ ‘अर्धमागधी’ भाषेत असून, इसवी सनाच्या तिसऱ्या

शतकापासून जैन लेखकांवरचा 'महाराष्ट्री'चा प्रभाव वाढत गेला.

भद्रबाहू, कालकाचार्य आणि पादलिप्त हे जैन परंपरेतील अत्यंत प्राचीन (इ.स. दुसरे-तिसरे शतक) आचार्य व लेखक होऊन गेले. सातवाहन साम्राज्याचा विस्तार बराच मोठा होता. सातवाहन राजे प्राकृतप्रेमी होते. जैन आचार्य सतत विहार करून, त्या त्या प्रादेशिक बोली भाषेत प्रवचने करीत असत (आजही करतात). वरील तीनही आचार्य प्रतिष्ठान (पैठण) येथे राहिलेले होते. भद्रबाहू हे प्रतिष्ठान-निवासी बृहत्संहिताकार वराहमिहिरांचेबंधू होते. कालकाचार्यांचा इतिहास शक संवत् आणि विक्रम संवत् या कालगणनेशी जुळलेला आहे. पादलिप्त हे हाल सातवाहनाचे निकटवर्ती होते. प्रबंधकोश, प्रभावकचरित, प्रबंधचिंतामणी - या जैन ऐतिहासिक ग्रंथांमध्ये या तीन लेखकांचे जीवन आणि साहित्य यांचा परिचय दिला आहे. भद्रबाहू व पादलिप्तांनी जैन महाराष्ट्रीत लेखन केले.

इ.स.च्या ६ व्या शतकात होऊन गेलेला 'दण्डी' कवी म्हणतो, 'महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।' (काव्यादर्श १.३४) यात अपेक्षित असलेला 'महाराष्ट्र' म्हणजे आजचा भौगोलिक महाराष्ट्र नसून, त्यात महाराष्ट्रच्या सीमेलगतच्या कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश व गुजरात या प्रदेशांमधले काही भाग समाविष्ट होते. एकंदरीत, महाराष्ट्री भाषा भारतातल्या मोठ्यात मोठ्या प्रदेशातील जास्तीत जास्त लोकांना समजत होती. (प्राकृतशब्दमहार्णव प्रस्तावना पृ.४०) जैन लेखकांनी म्हणूनच तिचा साहित्यभाषा म्हणून स्वीकार केला.

महाराष्ट्री भाषेची बरीच वैशिष्ट्ये जैन महाराष्ट्रीत असली तरी त्यात थोडे वेगळेपणही होते. ती अर्धमागधीने काहीशी प्रभावित होती, कारण श्वेतांबर जैन लेखकांवर अर्धमागधीचा प्रभाव होता. शिवाय ते लेखक भारताच्या ज्या ज्या प्रांतात जन्मलेले होते (उदा. हरिभद्र-राजपुताना, हेमचन्द्र-गुजरात) तेथील बोली भाषेतील शब्दसंपत्तीही त्यात होती. शिवाय जैन तत्त्वज्ञान व आचारातील अनेक रूढ पारिभाषिक शब्दही त्यात होते. दिगंबर जैनांनी 'शौरसेनी' भाषेला आपलेसे केल्यावर अर्थातच आपले सांप्रदायिक वेगळेपण राखण्यासाठी श्वेतांबर जैनांनी समकालीन भाषांमध्ये सर्वात प्रभावी असलेली 'महाराष्ट्री' भाषा आपली साहित्यभाषा म्हणून निवडली.

इसवी सनाच्या तिसऱ्या शतकापासून अठराव्या शतकापर्यंत जैनांनी 'महाराष्ट्री' प्राकृतात लेखन केले. वरील मुद्यात दिलेले जे महाराष्ट्री भाषेतील ग्रंथ आहेत त्याच्या कित्येक पट ग्रंथ आज जैन महाराष्ट्रीत उपलब्ध आहेत. उदाहरणच सांगायचे तर १२ वे शतक हा जैन महाराष्ट्रीचा सर्वात उत्कर्ष असलेले शतक आहे. विविध जैन लेखकांचे या एकाच शतकातील सुमारे ६५ ग्रंथ आज उपलब्ध आहेत. महाराष्ट्रीत काव्यांची रेलचेल आहे. कारण महाराष्ट्री ही मूलतः गीतभाषा म्हणूनच उदयास आली. तर जैन महाराष्ट्रीत काव्याबरोबरच कथा, कथासंग्रह, आख्यान, चरित (पुराण), तत्त्वज्ञान, नीती, आचार, व्रतमहिमा, तर्कशास्त्र, स्तोत्र, कर्मसिद्धांत, ज्योतिष, भूगोल - अशा अनेक विषयांवर विविध साहित्यप्रकारांची रचना दिसते.

जैन महाराष्ट्री साहित्याच्या १६ शतकांच्या सातत्यपूर्ण वाटचालीचे सामान्यतः तीन टप्प्यात वर्गीकरण करता येते.

प्रथम टप्पा (तिसरे ते सहावे शतक) - प्राचीन जैन महाराष्ट्री अथवा आर्ष प्राकृत. यामध्ये निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, विमलसूरिकृत आद्य जैन रामायण (पउमचरिय) आणि वसुदेवहिंडी - यांचा समावेश.

द्वितीय टप्पा (सातवे ते दहावे शतक) - अभिजात स्वरूप स्पष्ट दृग्गोचर. हरिभद्र, उद्योतन, शीलांक, धनपाल - हे विशेष लेखक. संस्कृतची छाप असली तरी बोलीभाषा, वाक्प्रयोग, देशी शब्दांचा वापर ही वैशिष्ट्ये.

तृतीय टप्पा (अकरावे ते अठरावे शतक) - जैन महाराष्ट्रीच्या शेवटच्या टप्प्यातील वैशिष्ट्ये सुखबोधा टीक आणि 'वज्जालग' मुक्तक-काव्य-संग्रहात दिसतात. व्याकरण आणि उच्चारण यावर अपभ्रंश भाषेचा प्रभाव स्पष्ट.

डॉ.ए.एम्.घाटगे हे आंतरराष्ट्रीय कीर्तीचे भाषाशास्त्रज्ञ होते. संस्कृत, प्राकृत, पाली, जर्मन, फ्रेंच, इंग्लिश, ग्रीक, लॅटिन - या सर्व भाषांवर त्यांचे प्रभुत्व होते. भांडारकर प्राच्य-विद्या संस्थेच्या प्राकृत-इंग्लिश महाशब्दकोशाच्या प्रस्तावनेत ते जैन लेखक हरिभद्राच्या जैन महाराष्ट्रीस 'अभिजात' असे संबोधतात. हरिभद्रांनी 'समरादित्यकथा' ही

प्रदीर्घ कादंबरी आणि 'धूर्ताख्यान' नावाचे व्यंग-उपहासप्रधान खंडकाव्य लिहिले. डॉ. घाटगे म्हणतात, "In it's classical form, as represented by Haribhadra's Samaradityakatha and Dhurtakhyana, Jain Maharashtra comes nearest to pure Maharashtra" (Intro.p.10)

आठव्या शतकात जर महाराष्ट्री भाषेने 'अभिजात' (classical) हा दर्जा मिळविला असेल तर त्याच महाराष्ट्री-अपभ्रंशातून बनलेल्या मराठीचे अभिजातत्व वस्तुतः जन्मसिद्धच म्हणावे लागेल. महाराष्ट्री भाषा 'अपभ्रंश' अवस्थांतरातून गेल्यावर ज्या रूपात अवतरली ती आधुनिक मराठी होय. 'प्राकृतशब्दमहार्णव' नावाच्या प्राकृत-हिंदी कोशाचे संपादक पं. हरगोविंददास सेठ म्हणतात - 'महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी और कोंकणी भाषाएँ उत्पन्न हुई ।' (प्रस्तावना पृ.५५)

सारांश काय, तर मराठी भाषेचे अभिजातत्व सिद्ध करण्यास जर जैन महाराष्ट्री भाषा सरसावली, तर एकाही शतकाचे किंबहुना शतकार्धाचेही अंतर न पडता, सलग दुसऱ्या शतकापासून अठराव्या शतकापर्यंतचा तिचा साहित्यिक प्रवास लक्षणीयपणे नोंदवता येतो.

(४) प्राकृतच्या व्याकरणकारांनी महाराष्ट्री प्राकृतला दिलेले महत्त्व :

चण्ड, वररुचि, कात्यायन, हेमचन्द्र, त्रिविक्रम, वसंतराज, मार्कण्डेय, लक्ष्मीधर - या प्रमुख वैयाकरणांनी लिहिलेल्या विविध प्राकृत भाषांच्या व्याकरणात महाराष्ट्रीला सर्वाधिक महत्त्व दिलेले दिसते. वररुचिचे व्याकरण ६ व्या शतकातील आहे. त्याच्या १२ परिच्छेदांपैकी ९ परिच्छेद 'सामान्य प्राकृत'वर आधारलेले आहेत. उरलेल्या सर्व प्राकृतांचे विवेचन थोडक्यात करून तो १२ व्या परिच्छेदाच्या ३२ व्या सूत्रात म्हणतो, 'शेषं महाराष्ट्रीम्'. याचा अर्थ असा की, ६ व्या शतकात महाराष्ट्री प्राकृत अत्यंत विकसित स्वरूपात होती. किंबहुना सामान्य प्राकृत = महाराष्ट्री - असे समीकरणही दृढ झाले होते. डॉ.ए.एम्.घाटगे यांनी एक स्वतंत्र शोधनिबंध लिहून वरील समीकरणास पुष्टी दर्शविली आहे. (Maharashtri Language and Literature - Journal of Uni. of Bombay, May 1936).

(५) अभिजात संस्कृत नाटकात स्त्रियांची पद्ये महाराष्ट्रीत :

भासाच्या नाटकातील प्राकृतचे वर्णन डॉ. घाटगे 'pre-classical Prakrit' असे करतात. त्यानंतरच्या नाटकातील प्राकृतला ते 'classical Prakrit' म्हणतात (Intro.p.11). कालिदास, हर्ष, विशाखदत्त, भवभूति, राजशेखर - यांच्या नाटकांमध्ये सामान्यतः गद्यभाग शौरसेनीत तर पद्यभाग महाराष्ट्रीत आहे. वस्तुतः भरताच्या नाट्यशास्त्रात महाराष्ट्रीचा निर्देश नसतानाही कालिदासासारख्या महाकवीने (काळ-अंतिम मर्यादा-४ थे-५ वे शतक) गीतांसाठी केलेला महाराष्ट्रीचा अंगीकार 'महाराष्ट्री' भाषेचे अभिजातत्व सिद्ध करतो.

(६) प्राकृतातील सट्टक, प्रहसन, भाण इ. नाट्यप्रकारातून लोकनाट्यांची निर्मिती :

'सट्टक' म्हणजे पूर्ण प्राकृत भाषेतील नाटक. ही परंपरा ९ व्या शतकात राजशेखर कवीने 'कर्पूरमंजरी' पासून सुरू केलेली दिसते. शृंगार, हास्य आणि अद्भुत हे यातील मुख्य रस. 'आनंदसुंदरी' या सट्टकाचे कर्ते घनश्याम (इ.स.१७००) 'महाराष्ट्रचूडामणि' आणि 'सर्वभाषाकवि' होते. 'रंभामंजरी' नावाच्या नयचन्द्रकृत सट्टकात (इ.स. १४ वे शतक-उत्तरार्ध) दिसणारी महाराष्ट्री-अपभ्रंश खासच मानली पाहिजे. जसे -

जरि पेखिला मस्तकावरी केशकलापु

तरी परिस्खलिला मयूरांचे पिच्छप्रतापु ॥ (अंक १)

मत्तविलास-प्रहसन आणि हास्यचूडामणि-प्रहसन ही दोन मुख्य प्रहसने, तसेच भाण-डिम इ. प्राकृत नाट्यप्रकार यांना आधुनिक मराठीतील तमाशा, वगनाट्ये इ.ची प्रेरणास्थाने मानावयास हरकत दिसत नाही.

महाराष्ट्रातील ग्रामीण भागात आज दिसणाऱ्या वासुदेवांची परंपरा आर्ष जैन महाराष्ट्रीतील 'वासुदेवहिंडी'

ग्रंथाशी जोडल्यास फार दूरान्वय होणार नाही, असे वाटते. गुणाढ्य कवीच्या 'बड्कहा'तून स्फूर्ती घेऊन संघदास आणि धर्मसेन या दोन जैन गणिवर्यांनी हा ग्रंथ लिहिला. कृष्णपिता वसुदेवाची वेगळीच माहिती त्यातून मिळते. वसुदेवाला भ्रमणाची (हिंडण्याची) फार आवड. अनेक वेषांतरे करून, (बहुरूपी बनून), अलंकार धारण करून (कवड्यांच्या माळा), मुकुटात मोरपीस खोचून त्याने १०० वर्षे भारतभ्रमण केले. तो गायनकलेत प्रवीण होता. प्रवासाहून आल्यावर त्याने ते वृत्तांत लिहिले. तोच ग्रंथ (आर्ष) महाराष्ट्री भाषेतला पहिला प्रवासवर्णनपर गद्यग्रंथ म्हणावयास हवा. सहाव्या शतकातील हा ग्रंथ प्राकृतच्या नव्या-जुन्या अभ्यासकांनी खूप प्रशंसिला आहे.

(७) 'कुवलयमाला' ग्रंथातील अठरा देशीभाषांमध्ये मराठीचा नमुना :

'दाक्षिण्यचिह्न' उद्योतनसूरींचा 'कुवलयमाला' हा प्रेमाख्यान सांगणारा ग्रंथ त्यांनी इ.स. ७७८ ला लिहून पूर्ण केला. 'दाक्षिण्यचिह्न' आणि महाराष्ट्री भाषेवर विलक्षण प्रभुत्व ! याही दृष्टीने भरताच्या नाट्यशास्त्रातील 'दाक्षिणात्स्र' ही 'महाराष्ट्री' असू शकते. साहित्यिक भाषांखेरीज वेगळ्या १८ बोलीभाषांचे नमुने त्यात नमूद केले आहेत. ते म्हणतात, "मरहट्ट देशातील लोक धष्टपुष्ट, काहीसे ठेंगणे, वर्णाने सावळे, सहनशील, अभिमानी आणि भांडखोर असतात. 'दिण्णल्ले गहियल्ले' (दिले-घेतले)-अशा शब्दांचा प्रयोग ते करतात." (कुवलयमाला पृ.१५२-१५३)

कुवलयमाला ग्रंथ सांस्कृतिक संदर्भांनी खचाखच भरलेला आहे. जैन महाराष्ट्री भाषेतला तो एक मूर्धन्यस्थानी तळपणाऱ्या हिऱ्यासारखा ग्रंथ आहे.

'लीलावती' ह्या कवी कौतूहलरचित महाराष्ट्री ग्रंथात (इ.स.८ वे शतक) कवी म्हणतो, 'रइयं मरहट्ट-देसि-भासाए ।' (लीलावती, गाथा १३३०) अर्थात्, 'ही रचना मी महाराष्ट्री (मराठी) देशी भाषेत केली आहे.' कुवलयमालाचा ग्रंथकारही, 'पाइयभासारइया मरहट्टय-देसि-वण्णय-णिबद्धा' असे शब्द वापरतो. (पृ.४)

'देशी-शब्द-कोश' या ग्रंथात पृ.२४ वर नमूद केले आहे की महाराष्ट्रातील संतकवी ज्ञानेश्वरांनीही 'मराठींसाठी 'देशी' हा शब्द प्रयुक्त केला आहे.

(८) 'गाथा' शब्दाची प्राचीनता :

'गाथासप्तशती'-हा महाराष्ट्री भाषेतला इ.स.च्या पहिल्या-दुसऱ्या शतकातील मुक्तकांचा (द्विपदींचा, गाथांचा) संग्रह आहे. १६ व्या शतकातील संत तुकारामांच्या पद्यसंग्रहासही 'तुकारामांचा गाथा' असे म्हणतात.

महाराष्ट्री मुळातच गीतभाषा आहे. 'गाथा' हा एक लोकप्रिय छंद अथवा वृत्त आहे. संस्कृतमध्ये जो 'श्लोक' किंवा 'आर्या' तीच प्राकृतमध्ये 'गाथा'. 'वृत्तजातिसमुच्चय' ग्रंथात विरहांक (अथवा हरिभद्र) या लेखकाने (काल अंदाजे ६ वे-८ वे शतक) 'गाथा' छंदाचे लक्षण आणि २६ प्रकार दिले आहेत.

'गाथालक्षण' ग्रंथात जैन मुनी नंदिताढ्य (इ.स.१०००) यांनी ९६ गाथांमध्ये 'गाथा' छंदाचे विवेचन केले आहे.

'गाथा' (गाहा) शब्दाचा सर्वात प्राचीन उपयोग जैनांच्या 'सूत्रकृतांग' या अर्धमागधी ग्रंथात दिसतो. 'उत्तराध्ययन' नामक ग्रंथातही 'गाहासोलसग' असा निर्देश येतो. हे अर्धमागधी उल्लेख इसवीसनपूर्व काळातील मानले जातात.

(९) गाथासप्तशती आणि जैन आचार्य 'पादलिप्त' :

पादलिप्त हे अतिशय प्रभावक जैन आचार्य होऊन गेले. (इ.स.१ ले-२ रे शतक). 'गाथासप्तशती' (अथवा गाहाकोस) या ग्रंथाच्या निर्मितीमध्ये त्यांचे भरीव योगदान आहे. कुवलयमाला ग्रंथात (इ.स.७७८) पादलिप्तांबोब्र सातवाहन आणि षट्प्रज्ञक यांचे उल्लेख आहेत. 'पालित्तयेण हालो हारेण व सहइ गोद्वीसु'-यामध्ये पादलिप्तांना 'सातवाहनाच्या गळ्यातला हार' म्हटले आहे. त्यांच्या आज उपलब्ध नसलेल्या 'तरंगवईकहा' नावाच्या अप्रतिम काव्यग्रंथाचा उल्लेख आहे. त्यांचे हे प्रेमाख्यान महाराष्ट्रीत (जैन महाराष्ट्रीत नव्हे) लिहिलेले होते.

ज्याअर्थी हाल सातवाहनाच्या काव्य-दरबारात ते अग्रगण्य होते, त्याअर्थी 'तरंगवईकहा' पादलिप्तांनी आधीच लिहिलेली असावी. त्यामुळेच ते सुप्रसिद्ध झाले होते. जैन प्रबंधग्रंथात दोघांच्या संदर्भातल्या पैठणला घडलेल्या दंतकथा नमूद केल्या आहेत. गाथासप्तशतीच्या रचनेसाठी गाथांचे संकलन, निवड - यामध्ये पादलिप्त नक्कीच सहभागी होते. गाथासप्तशतीत दोघांच्या सुमारे १५-१५ गाथा आहेत. त्या प्रत्येक ठिकाणी (त्या त्या शतकात) त्यांच्या गाथा शेजारी-शेजारी आलेल्या दिसतात. देशी अर्थात् संस्कृतोद्भव नसलेल्या शब्दांचा त्यांनी कोश (संग्रह) केला होता - अशी माहिती हेमचन्द्रकृत 'देशीनाममाले'च्या दुसऱ्या गाथेच्या टीकेत मिळते.

एकंदरीत महाराष्ट्रीतील पहिला काव्यग्रंथ (उपलब्ध नसला तरी अनेक पुराव्यांनी नक्की झालेला) पादलिप्त (पालित, पालित्त, पालित्तय) या जैन आचार्यांनी लिहिलेला होता असे दिसते.

(१०) मराठी-भाषकांना महाराष्ट्री आणि जैन महाराष्ट्री आकलनसुलभ :

'मराठी' आणि 'महाराष्ट्री'चा संबंध काही विद्वान अमान्य करित असले तरी दुसऱ्या कोणत्याही भाषकांपेक्षा मराठीभाषक लोकांना महाराष्ट्रीच नव्हे तर कोणत्याही प्राकृत भाषा शिकणे अधिक सोपे जाते. ह्यावरून अख्की सिद्ध होते की 'वैयाकरणांची सामान्य प्राकृत' म्हणजे महाराष्ट्रीच आहे.

जैन महाराष्ट्रीमध्ये लेखन केलेल्या जैन आचार्यांचे (प्रायः श्वेतांबर) मराठीला असलेले योगदान स्पष्ट करण्यासाठी उदाहरणादाखल शब्दांचा एक तक्ता दिला आहे. सर्व शब्द देशीनाममालेतून घेतले आहेत.

जैन महाराष्ट्री भाषेत आढळणारे मराठीशी साम्य असलेले 'देशी' शब्द

- | | |
|--------------------------|----------------------------------|
| १) उच्छल - उसळणे | २) उंदुर - उंदीर |
| ३) ऊसअ - उशी | ४) √ओलुंड - ओलांडणे |
| ५) कोड्ड - कोड, कोडकौतुक | ६) खिडक्किया - खिडकी |
| ७) √खिर - खिरणे | ८) √खुड्ड - खुडणे |
| ९) खेड्ड - खेळणे | १०) घढ - गड |
| ११) √घुट्ट - घोट घेणे | १२) √घुसल - घुसळणे |
| १३) √घोल - घोळणे | १४) √चक्ख - चाखणे |
| १५) चंग - चांगला | १६) √चच्चुप्प - चाचपणे |
| १७) √चड - चढणे | १८) चिक्खल्ल - चिखल |
| १९) √चुक्क - चुकणे | २०) √चोप्पड - चोपडणे |
| २१) √छिव - शिवणे | २२) छोयर - छोकरा |
| २३) √जग्ग - जागणे | २४) जंभा - जांभई |
| २५) √जिम - जेवणे | २६) जुज्झ - झुंज, युद्ध |
| २७) √जुप्प - जुंपणे | २८) √झड - झडणे |
| २९) झडप्प - झडप | ३०) √झर - झरणे |
| ३१) डगल - ढेकूळ | ३२) √ढुंढुल्ल - ढंढोल - धुंढाळणे |
| ३३) तुप्प - तूप | ३४) √तोड - तोडणे |
| ३५) √दक्खव - दाखविणे | ३६) ददर - दादर |
| ३७) दाढिया - दाढी | ३८) √दाव - दावणे, दाखविणे |
| ३९) दुब्भ - दुभती (गाय) | ४०) देक्ख - देखणा |
| ४१) पल्हत्थ - पालथा | ४२) √पाव - पावणे, प्राप्त करणे |

४३) √पोक्कर - पुकारणे

४५) पोट्ट - पोट

४७) √फिट्ट - फिटणे

४९) √फुस - पुसणे

५१) बडबड - बडबड

५३) बाउल्ल - बाहुला

५५) √बुड्ड - बुडणे

५७) √भण - म्हणणे

५९) √भुल्ल - भुलणे, चूकभूल

६१) रोट्ट - रोटी

६३) लंचा - लाच

६५) √वेढ - वेढणे

६७) √संघ - सांगणे

६९) √सिंप - शिंपडणे

४४) पोच्चड - पोचट

४६) √पुंछ - पुसणे

४८) √फुट्ट - फुटणे

५०) बडल्ल - बैल

५२) बप्प - बाप

५४) बिट्ट - बेटा

५६) √बोल्ल - बोलणे

५८) √भुक्क - भुंकणे

६०) √महमह - घमघमणे

६२) √लग्ग - लागणे, चिकटणे

६४) √लोट्ट - लोटणे

६६) वेल्ल - रमणीय, वेल्हाळ

६८) √सारव - सारवणे

७०) √हो - होणे

(११) महाराष्ट्री-अपभ्रंश भाषेला जैनांचे योगदान :

महाराष्ट्रभूमीत जन्मलेल्या, वाढलेल्या जैन कवींनी १० व्या शतकापासून महाराष्ट्री-अपभ्रंशात विपुल ग्रंथरचना केलेल्या दिसतात. त्या प्रायः सर्व दिगंबर-संप्रदायी कवींच्या आहेत. हा एक सर्वस्वी वेगळा आणि विस्तृत विषय आहे. अधिक माहितीसाठी 'महाराष्ट्र व जैन संस्कृति' हा ग्रंथ पहावा.

उपसंहार :

महाराष्ट्री, महाराष्ट्री-अपभ्रंश आणि मराठी या क्रमाने विकसित झालेल्या भाषांना जैनांनी भरीव योगदान केले आहे. त्यातील 'जैन-महाराष्ट्री'चा सहभाग प्रस्तुत लेखात विशेष अधोरेखित केला आहे.

पहिल्या-दुसऱ्या शतकापासून अठराव्या शतकापर्यंत - सातत्याने जैन-महाराष्ट्रीत लेखन करून, जैनांनी मराठी भाषेचे 'अभिजातत्व' सिद्ध करण्यास मोठाच हातभार लावला आहे.

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

१) A Comprehensive and Critical Dictionary of Prakrit Languages, Vol. 1 (Introduction), Dr.A.M.Ghatage, BORI, Pune, 1996

२) A Brief Survey of Jaina Prakrit and Sanskrit Literature, Dr. Nalini Joshi, Jain Chair Publication, Uni.Pune, 2009

३) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, (भाग १-७), पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, १९६६-१९८७

४) देशीनाममाला, हेमचंद्र, भांडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पुणे, १९८९

५) पाइय-सद्-महण्णवो (प्रस्तावना), पं. हरगोविंद सेठ, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, बनारस, १९६३

६) प्राकृत भाषा और साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, १९६६

७) प्राकृत साहित्य का इतिहास, डॉ. जगदीशचन्द्र जैन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९८५

८) भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, डॉ. हीरालाल जैन, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल, १९६२

९) महाराष्ट्र व जैन संस्कृति, सं.मा.प.मंगुडकर, महाराष्ट्र जैन सांस्कृतिक मंडळ, पुणे, १९९८

जैन धर्म आणि अहिंसा
(म. गांधींच्या विशेष संदर्भात)

(गांधीजयंतीनिमित्त आयोजित, गांधीभवन, कोथरूड दि. ५.१०.२०१२, येथील व्याख्यानमालेत 'जैन धर्म आणि अहिंसा' हे तिसरे पुष्प प्रा.डॉ. नलिनी जोशी यांनी गुंफले. 'अहिंसेविषयीचे जैन धर्मातील नेमके स्थान आणि वास्तविकता' याने भरलेल्या या व्याख्यानाची दाद फक्त जाणकार आणि नवख्या उपस्थितांनीच नव्हे तर कर्णोपकर्णी ऐकलेल्या श्रोत्यांनीही दिलेली आहे. व्याख्यानाचे शब्दांकन येथे प्रस्तुत करित आहे - डॉ. कौमुदी बलदोटा)

'जैन धर्म आणि अहिंसा' या व्याख्यानात पाच मुद्यांनी विचार केलेला आहे. ते मुद्दे असे -

- अ) जैनांची अहिंसा : प्रस्तावना
- ब) जैनवर्णित अहिंसेचे प्रकार-उपप्रकार
- क) जैनांच्या अहिंसेचे व्यावहारिक परिणाम
- ड) गांधीजींचे जैन धर्म व जनतेस योगदान
- इ) जैन युवक-युवतींचे विचार

अ) जैनांची अहिंसा : प्रस्तावना

जैन शास्त्राची आधारशिलाच अहिंसा आहे. किंबहुना जैन धर्माचे पर्यायी नावच अहिंसाधर्म आहे. आणि तीच त्यांची ओळख आहे. जैन धर्माच्या मांडणीची ठराविक पद्धत अशी आहे की अहिंसा, अनेकान्तवाद, स्याद्वाद, नयवाद, कर्मसिद्धांत, विज्ञानानुकूलता, उदारमतवाद, क्षमाशीलता, पर्यावरणाला अनुकूलता, शाकाहार, व्यसनमुक्ती हे सर्व जैनधर्मात असल्याने, हा धर्म 'वैश्विक धर्म' होण्याच्या योग्यतेचा आहे. यात नाही असे जगात काहीच नाही. 'जगातले सर्व प्रश्न, कलह सुटण्याचा हमखास उपाय जैन तत्त्वांमध्ये आहे' -अशी जपमाळ जैन व्यक्ती सतत ओढीत असतात. 'जगातले सर्व प्रश्न फक्त जैनधर्मच सोडवू शकतात' -असा एकमेव दावा करणारे जैन हे लोकसंख्येच्या जेमतेम १ टक्का आहेत, ह्याचे आपण भान ठेवले पाहिजे.

शिवाय 'अहिंसा' ही काही फक्त जैनांची मक्तेदारी नाही. 'अहिंसा परमो धर्मः' हे सुप्रसिद्ध वचन महाभारतात दोनदा आले आहे. गीतेत याचे विवेचन आहेच. पातंजलयोगात यम-नियम इत्यादि अष्टांगयोगात अहिंसा प्रथम स्थानावर आहे. बौद्धांच्या पिटकातही गौतम बुद्धांना 'परमकारुणिक' संबोधून अहिंसा व्यक्त झालेली आहे. जैनांची अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ आहे असे नसून, तिची मांडण्याची पद्धती अलग आहे, सूक्ष्मतम आणि तरलग्राही आहे. जसे अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य आणि अपरिग्रह अशी महाव्रतांची नावे न सांगता, प्राणातिपात-विरमण, मृषावाद-विरमण, अदत्तादान-विरमण, मैथुन-विरमण आणि परिग्रह-विरमण, अशी नावे सर्व जुन्या ग्रंथात येतात. विरमण अर्थात् विरति अर्थात् त्यागाच्या रूपात केली जाणारी मर्यादा, हे या नावामधून अभिप्रेत आहे. प्राणातिपात म्हणजे प्राणांचा अतिपात म्हणजे प्राणांचा घात किंवा इजा, दुखापत. साधुसाध्वी आजीवन सर्वांशाने हिंसेचा त्याग करून अहिंसा महाव्रताचे पालन करतात तर गृहस्थ अथवा श्रावक-श्राविका आंशिक रूपात, स्थूलपणे अहिंसापालन करतात.

'जैन पावभाजी', विमानात-आगगाडीत 'जैन फूड' यासारखी 'जैन अहिंसा' ही काही वेगळी आहे का ? तर जैनांच्या अहिंसेचे वेगळेपण तिच्या मांडणीत, त्याच्या सूक्ष्मतेत, प्रकार आणि उपप्रकारात आणि मुख्यतः आचारव्यवहारात दडलेले आहे.

ब) जैनवर्णित हिंसा-अहिंसा : प्रकार-उपप्रकार

(१) जैन दर्शनाचा संस्कृत सूत्रबद्ध शैलीतील प्रमाणित सर्वमान्य अशा तत्त्वार्थसूत्र या ग्रंथात, तत्त्वज्ञानाच्या अंगाने अहिंसेची व्याख्या दिली आहे - 'प्रमत्तयोगात प्राणव्यपरोपणं हिंसा'. याचा अर्थ असा की, 'रागद्वेष इत्यादींच्या योगाने प्राणांचे केलेले व्यपरोपण म्हणजे इजा, घात, दुखापत किंवा वध'-अशी व्याख्या केली आहे.

जैनांची अहिंसा समजावून घेताना, त्यांच्या पारिभाषिक भाषेत समजावून घेऊ या.

'प्राण' हे दहा आहेत - मन-वचन-काया (३)+ ५ इंद्रिये+ आयुष्य (१)+ श्वासोश्वास (१). यापैकी एक किंवा अधिक प्राणांचा घात, इजा, दुखापत, वध. मन-वचन-काया हे तीन योग आहेत. योग म्हणजे हालचाल अर्थात् मन-वचन-कायेच्या सर्व हालचाली.

जैनांच्या अहिंसाविषयक साहित्याचा आढावा घेतला तर इ.स.पूर्व ५०० पासून इ.स.१५०० पर्यंतच्या अर्धमागधी, जैन शौरसेनी, जैन महाराष्ट्री, संस्कृत आणि अपभ्रंश या पाचही प्रचलित भाषांमधील प्रत्येक ग्रंथात अहिंसाविवेचन आणि अहिंसामाहात्म्य आहे. आगमग्रंथांपैकी 'प्रश्नव्याकरण' उघडले की हिंसासूचक तीस पदावली त्यात दिसतात. 'भगवती आराधना' या ग्रंथात अहिंसा विषयाला वाहिलेल्या शंभर गाथा आहेत. 'पुरुषार्थसिद्धयुपाय' हा ग्रंथ तर अहिंसेच्या सूक्ष्मतम विवेचनाचा जणू कळसच आहे.

(२) जीव म्हणजे an individual soul. जीवाचे मुख्य लक्षण चेतना अर्थात्consciousness. त्याला पारिभाषिक शब्दात 'उपयोग' म्हणतात. उपयोग म्हणजे 'जाणीव' (दर्शन) आणि 'बोध' (ज्ञान). अति अति सूक्ष्म microbes म्हणजे निगोदी जीवांचे विस्ताराने वर्णन केलेले आढळते. जीवाची व्याप्ती म्हणाल तर 'जीव अनंत आहेत'. संख्यात, असंख्यात, अनंत, अनंतानंत अशी (infinite multiplied by infinite). अनंतानंत सूक्ष्म जीव हे आपल्या लोकाकाशात ठसाठस भरलेले आहेत.

तत्त्वार्थसूत्राच्या दुसऱ्या अध्यायात मोक्षाच्या दृष्टीने, मनाच्या दृष्टीने, मर्जीनुसार हालचाल करण्याच्या दृष्टीने, इंद्रियांच्या दृष्टीने, एकेंद्रिय ते पंचेंद्रिय या दृष्टीने, जन्माच्या दृष्टीने, गर्भाच्या दृष्टीने, शरीराच्या दृष्टीने, लिंगाच्या दृष्टीने, गर्तीच्या दृष्टीने केलेले जीवांचे अतिसूक्ष्म वर्णन वाचले की जणू आपणBiology वाचतो आहोत असे वाटते.

पृथ्वी, अप्, तेज, वायु आणि वनस्पती हे सर्व सजीव आहेत. ते एकेंद्रिय जीव आहेत. अप्कायिक जीव म्हणजे पाण्यात असंख्य सूक्ष्म जीवजंतू दिसतात, असे नसून, 'पाणी हीच ज्यांची काया म्हणजे शरीर आहे', त्यांना 'जलकायिक जीव' म्हटले आहे. जसे आपले शरीर बनलेले आहे तसे पाण्याचे हे शरीर आहे. दैनंदिन जीवनात अहिंसा इतकी खोलवर पोहचण्याचे कारण की हे सर्व जीव आहेत - मी श्वास घेतला, मी पाणी प्यायले, मी भाजी-फळे खाल्ली, मी चालले की या सर्व जीवांना इजा पोहोचतेच. म्हणूनच मर्यादित यांचा वापर करावा.

(३) योग म्हणजे हालचाल. मनाच्या वाचेच्या आणि शरीराच्या कोणत्याही स्थूल अगर सूक्ष्म हालचालींना जैन परिभाषेत 'योग' म्हणतात. प्रत्येक हालचालीत हिंसा होते. विवेकी मनुष्याने प्रत्येक हालचाल सावधपणे म्हणजे 'अप्रमत्त' राहून करावी अशी अपेक्षा आहे.

(४) कृत-कारित आणि अनुमोदित असे तीन 'करण' सांगितले आहेत. स्वतः करणे-दुसऱ्याकडून करविणे आणि करणाऱ्यास अनुमोदन देणे, असा या तीन करणांचा अर्थ आहे.

तीन करण x तीन योग = नऊ प्रकारे नवकोटिपरिशुद्ध हिंसेचा आजीवन त्याग हे 'महाव्रत' आहे.

(५) द्रव्यहिंसा आणि भावहिंसा अशा दोन प्रकारांनी सुद्धा हिंसेचे वर्णन करतात. द्रव्य म्हणजे दृश्य स्वरूप आणि भाव म्हणजे मनातील भावभावना. दुसऱ्याविषयी रागद्वेष इ. विकार मनात उद्भवले, कुठल्याही घातपाताची हिंसेची योजना मनात बनविली, हिंसेच्या विचारांचे मनात नियोजन करून झाले की ती झाली 'भावहिंसा'. हे सर्व प्रत्यक्ष करणे, ते वास्तव रूपात आणणे म्हणजे 'द्रव्यहिंसा'. जसा भाव कमी-अधिक तीव्र होतो तसा तीव्र-मंद पापबंध होतो. उदाहरणार्थ, एकजण दुसऱ्याला भर रस्त्यात त्वेषाने मारपीट करित आहे. काहीजण आनंदाने तमाशा

पहात आहेत. काहीजण हळहळत आहेत, तर काहीजण मारणाऱ्यास अडवीत आहेत. आता प्रत्यक्ष मारणाऱ्यास म्हणजे द्रव्यहिंसा करणाऱ्याला वेगळा पापबंध तर ते बघून मनात उसळणाऱ्या भावनांप्रमाणे त्या त्या व्यक्तींना वेगवेगळा तीव्र-मंद पापबंध होतो.

(६) स्थूल हिंसेचे रूढ चार प्रकार केलेले आहेत. (अ) संकल्पी हिंसा म्हणजे ठरवून केलेला घात. कोणत्याही निरपराध प्राण्याची जाणूनबुजून केलेली हिंसा 'संकल्पी हिंसा' आहे. ही गृहस्थासाठी सर्वथा त्याज्य मानली आहे. (ब) घर-दुकान-भोजन, या जीवन जगण्याच्या अनिवार्य आणि अपरिहार्य गोष्टी आहेत. शेती करून धान्य पिकविणे, स्वयंपाक-स्वच्छता करणे, घर बांधणे इ. क्रिया करताना त्या जीवांविषयी करुणाभाव ठेवून आणि खबरदारी घेऊन झालेली हिंसा 'आरंभी हिंसा' आहे. (क) उद्योग-व्यवसायासाठी आणि अर्थार्जनासाठी केलेली हिंसा 'उद्योगी हिंसा' होय. तीही अनिवार्यपणे होतेच. (ड) आपल्यावर झालेल्या अन्यायाच्या प्रतिकारासाठी केलेली हिंसा ही 'विरोधी हिंसा' आहे. यासाठी श्रेणिकमहाराजा आणि भगवान महावीर यांचा संवाद अतिशय बोलका आहे. श्रेणिकमहाराज परराष्ट्रधोरणासंबंधी प्रश्न विचारतात तेव्हा महावीर म्हणतात की, "राज्यविस्तारासाठी केलेले युद्ध ही 'हिंसा' आहे पण आपल्या राज्याच्या आणि प्रजेच्या संरक्षणासाठी केलेले युद्ध हे 'अन्यायाच्या प्रतिकारासाठी केलेली हिंसा' आहे. ती क्षम्य आहे."

जैन शास्त्रांमध्ये विरोधी हिंसेचे उदाहरण म्हणून प्रभावक-आचार्य 'कालकां'चे उदाहरण देतात. गर्दभिल्ल राजाने आपल्या साध्वी झालेल्या बहिणीला अंतःपुरात कोंडून ठेवलेले समजताच, तिच्या रक्षणासाठी स्वतः कालकाचार्य साधुवस्त्रे काढून ठेवतात. इतर राजांच्या मदतीने गर्दभिल्ल राजाबरोबर युद्ध करतात, बहिणीला सोडून आणतात. प्रायश्चित्त घेऊन पुन्हा साधुधर्मात स्थित होतात.

(७) गृहस्थांसाठी बारा अणुव्रते सांगितली आहेत. त्यातील एक आहे, 'अनर्थदण्डविरति'. अर्थात् विनाकारण निरर्थक हालचालींचा त्याग. 'प्रमादचर्या' या नावाने जैन शास्त्रात प्रसिद्ध असलेले हे नियम 'नागरिकशास्त्राचा उत्तम नमुना' आहे.

(अ) पापोपदेश न देणे - दुसऱ्याला पापाचा उपदेश न करणे, दारू-जुगार इत्यादि व्यसनांच्या नादी लागणे व इतरांना लावणे, अफवा पसरविण्यात सहभाग घेणे, काहीतरी गैरकाम किंवा गुन्हा करविण्यासाठी उकसविणे - हाही अनर्थदण्ड होय. (ब) हिंसेची उपकरणे न बनविणे, ती एकमेकांना न देणे, चाकू-सुरी-ब्लेड इत्यादि जी-जी म्हणून हिंसेची उपकरणे समजली जातात ती जैन परंपरेत भेटवस्तू म्हणून दिली जात नाहीत. (क) विनाकारण 'चाळा' म्हणून केलेल्या क्रिया, या स्वतःचे प्रयोजन तर साधत नाहीतच आणि इतरांना मात्र उपद्रव होतो. यासाठी शेकडो उदाहरणे देता येतील. जसे - बसल्याबसल्या पाय जोरजोराने हलविणे, अनावश्यक हातवारे करणे, झाडाखालून जात असताना फांदी उगाचच उखडणे, उगीचच फुले-पाने कुस्करणे, विनाकारण जमीन उकरणे, हिरवळ उपटणे, काठी हातात घेऊन दिसेल त्या वस्तूवर मारत जाणे, आळसाने किंवा बेफिकिरीने कचरा खिडकीतून भिरकाविणे, कचऱ्याचे पाण्यात विसर्जन करणे, इत्यादि.

जैन परंपरेत कचऱ्याचे पाण्यात विसर्जन करायला मनाई आहे. स्थंडिल भूमीवर विसर्जन करावयास सांगितले आहे. याला जैनशास्त्राप्रमाणे 'परिष्ठापनिकी समिति' असे संबोधण्यात येते.

रोजच्या जीवनव्यवहारासाठी केलेली हिंसा असो वा आध्यात्मिक, वैयक्तिक असो वा सामूहिक, स्थूल हिंसा असो वा सूक्ष्म, साधूने केलेली हिंसा असो वा श्रावकाने, अनिवार्यपणे करावी लागणारी हिंसा असो वा निरर्थक - हिंसा हे 'पाप'च आहे. पाप हे 'कर्म' आहे. प्रत्येक कर्माचा बंध आपल्याबरोबर म्हणजे प्रत्येक जीवाबरोबर होणार आहे. ज्या प्रकारचे कर्म आपण बांधले, ते किती काळ जीवाबरोबर राहणार ती कालमर्यादा ही त्या कर्माची 'स्थिती' आहे. कर्मे बांधताना ती किती तीव्रतेने अगर मंदतेने बांधली याला 'विपाक' म्हणतात. त्या कर्माचा 'उदय' झाला की त्याचे फळ मिळतेच, हा जैनांचा कर्मसिद्धांत आहे.

(८) भ. महावीरांनी आपल्या उपदेशाच्या माध्यमातून, सूत्रकृतांगात क्रियास्थानांच्या वर्णनात, समाजातील

१२ अपप्रवृत्तींचे स्वरूप उभे केले आहे. त्यात आत्महत्या, कौटुंबिक हिंसा, बुवाबाजी, काळी जादू, सामाजिक गुन्हे, आर्थिक घोटाळे, वैयक्तिक-धार्मिक-राजकीय इच्छा-आकांक्षासाठी केलेल्या हिंसा, यांचे वर्णन येते. हे वर्णन 'सत्यमेव-जयते'च्या १३ एपिसोडची आठवण करून देते. दूरदर्शनवर क्राइम पेट्रोल, सावधान इंडिया, दस्तक, लक्ष्य यात जे गुन्हेगारी जगताचे चित्रण दाखवितात तसाच प्रकाशझोत भगवान महावीरांनी समाजाच्या सर्व स्तरावर टाकला आहे.

(क) अहिंसेचे उपनिषद् : भगवती आराधना

भगवती आराधना या ग्रंथात 'अहिंसामाहात्म्य' या विषयाला वाहिलेल्या जवळजवळ १०० गाथा आहेत. 'गाथा' म्हणजे प्राचीन बोलीभाषेतील गेय रचना. 'ते गीत चाल लावून म्हणणे' यास गाथा म्हणतात. संस्कृतमध्ये यास 'आर्या' किंवा 'श्लोक' म्हणतात. जणूकाही अहिंसेचे उपनिषद् असलेल्या या ग्रंथातील काही खास विचार पाहू

(१) त्रैलोक्य आणि तुझा जीव यातील एकाची निवड करायला सांगितली तर स्वाभाविकपणे प्रत्येकजण स्वजीवनच निवडेल. याचाच अर्थ असा की, कोण्या एका प्राणिमात्राचे जीवन हे त्रैलोक्यापेक्षाही महत्त्वाचे आहे. म्हणून इतर कोणत्याही एका जीवाचा घात करणे म्हणजे त्रैलोक्याचाच घात करणे होय.

(२) खऱ्या अर्थाने 'अहिंसा' हे एकच व्रत आहे. बाकीची चार महाव्रते किंवा श्रावकांची अकरा अणुव्रते, ही फक्त अहिंसापालनासाठीच अंतिमतः उपयुक्त आहेत. हे उपमांद्वारे समजावताना आचार्य म्हणतात, जणू अहिंसा हे मुख्य पीक आहे आणि बाकीची व्रते ही त्या पिकाच्या रक्षणासाठी घातलेले कुंपण आहे.

(३) 'अणुपेक्षा लहान' आणि 'आकाशापेक्षा मोठी' अशी अहिंसा आहे. या गाथेवरून तुकारामांची गाथा आठवते - 'अणुरणिया थोकडा तुका आकाशाएवढा'.

परब्रह्माचे वर्णन करताना उपनिषद्कार म्हणतात, 'अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं'. हे जैनांच्या विचारसरणीशी अतिशय मिळतेजुळते आहे.

(४) मनुष्यांसाठी वयानुसार आखलेल्या, कर्तव्यकर्म जीवनपद्धतीवर आधारित अशा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ आणि संन्यास या चारही आश्रमांचे अहिंसा हे 'हृदय' आहे. सर्व शास्त्रांचा 'गर्भ' आहे. सर्व गुणांचे 'सार' आहे. अहिंसा ही सर्व आश्रमांमध्ये सर्वात महत्त्वाचे आचारपालन किंवा कर्तव्यपालन आहे.

(५) मनुस्मृतिमध्ये जर 'गो-ब्राह्मण आणि स्त्री' यांची हत्या टाळणे हा जर धर्म असेल तर 'सर्वभूतदया' हाच खरोखर परमधर्म आहे.

(६) या संसारात आत्म्याची अनंत परिभ्रमणे चालू आहेत. प्रत्येक जीवाबरोबर त्याचा संपर्क एकदा किंवा अनेकदा आलेला आहे. वेगवेगळ्या नात्यांनी अलगअलग जन्मांमध्ये प्रत्येक जीव बांधला गेला आहे. यानुसार कोणत्याही जीवाची केलेली हिंसा म्हणजे आप्तस्वकीयांचीच हिंसा होते.

(७) जीववध हा आत्मवध आहे. जीवदया ही स्वतःवरचीच दया आहे. म्हणून जीववध हा विषकंटकाप्रमाणे टाळावा.

(८) स्वतःवर दबाव आणणे, त्याग करणे, पति 'परमेश्वर' मानून सेवा करणे, संसारात एकरूप होऊन स्वतःवर अन्याय करणे, दुःख-क्लेशात बुडणे, आत्महत्या करणे, स्वतः प्रसन्न न राहणे, ही आत्महिंसेची उदाहरणे म्हणून सांगितली आहेत. आताचा जो परवलीचा शब्द आहे - 'प्रत्येकाला आपापली space द्या', 'मला space हवी', ती दुसऱ्या-तिसऱ्या शतकातील पाणितलभोजी शिवार्यांनी अहिंसेच्या परिभाषेत या space चे महत्त्व अधोरेखित केले आहे.

(९) 'हत' म्हणजे मार खाऊन घेणारा आणि 'घातक' म्हणजे मारणारा, घात करणारा - या दोहोंच्या मरणात फक्त काळाचेच तेवढे अंतर आहे. मी अमक्याला आत्ता मारीन, असे म्हणणारा काय अमरपट्टा घेऊन आला आहे

का ?

(१०) मला आता जी काही दुःखे भोगावी लागत आहेत ती सर्व माझ्या केलेल्या हिंसारूप कर्माचीच फळे आहेत.

क) जैनांच्या अहिंसेचे व्यावहारिक परिणाम

(१) अहिंसातत्त्वाचा दैनंदिन व्यवहारात सूक्ष्म वापर करत असताना, जैनांनी प्रथम स्वतःच्या आहारात पूर्ण अहिंसा आणली. शाकाहाराच्या अंतर्गतही प्रत्येक वनस्पतिजीवाचा सूक्ष्म विचार केला. 'ज्यांची जीवितशक्ती मुळात कमीत कमी आहे अशा वनस्पतिजीवांना साधारणशरीरी' म्हणतात. अशा वनस्पतींचा आहारात त्याग करावयास सांगितला. बटाटा, रताळी इ. कंद 'अनंतकायिक वनस्पती' असल्याने धार्मिक दृष्टीने कायमच वर्ज्य मानल्या आहेत. शाकाहाराचा अवलंब करतानाही त्यात अनेक नियम-उपनियम तयार केले.

(२) साधूंच्या प्रांतात शिरले की 'पिण्डैषणा' या ग्रंथात, साधूंच्या प्रासुक, एषणीय अशा आहारग्रहणाची विस्ताराने चर्चा केलेली दिसून येते. साधूने भिक्षा कशी घ्यावी, याचे अनेक नियम-उपनियम, प्रायश्चित्तविधी यांची अतिशय सूक्ष्मतेने केलेली चिकित्सा आढळून येते.

पाच उदुंबर फळांचा म्हणजे वड-पिंपळ-उंबर या जातींच्या फळांचा त्याग सांगितला आहे. मद्य-मांस-मधु-नवनीत म्हणजे लोणी, यांचाही त्याग करावयास सांगितला आहे. त्याकाळी मधमाशाचे पोळे जाळून मध मिळवीत असत. शिवाय ताकात तयार झालेले ताजे लोणी खातात पण लोणी बाहेर काढून, टिकवून खाण्याचा निषेध केलेला आहे. यामुळे 'अमूल बटर' निषिद्ध. पाणी गाळून, उकळून प्यायला सांगितले आहे. सारभाग कमी आणि तुच्छभाग जास्त अशी फळे उदा. सीताफळ, बोर खाण्याचा निषेध केला आहे.

(३) जैन स्त्री सिल्कच्या साड्या घालताना दिसत नाही. लेदर पर्स, बॅगचा वापर करताना दिसत नाही. घरात पाळीव प्राणी किंवा अॅक्वेरियम ठेवीत नाही. हिंसेवर आधारित असे पंधरा व्यवसाय निषिद्ध म्हणून सांगितले आहेत. खाटिक, मासेमारी, शिकार, रेशीम, हस्तिदंत इत्यादि प्रत्यक्ष हिंसाधार व्यवसायांमध्ये जैन व्यक्ती सहजी प्रवेश करीत नाही. पेस्ट-कंट्रोल करतानाही त्यांच्या मनात पापबंधाचेच विचार असतात.

(४) जैनांची अहिंसा ही हळूहळू नकारात्मकतेकडे वळली. अमूक व्यवसाय करायचे नाहीत ; अमूक वनस्पती-या भाज्या, ही फळे खायची नाहीत ; यांपासून दूर रहा ; यांचा त्याग करा - अशा प्रकारची नकारात्मकता वाढत गेली. उदाहरणार्थ सुग्रास संतुलित अन्नाचे ताट जर समोर आले तर 'अन्न हे पूर्णब्रह्म' मानून सामान्य व्यक्ती 'वदनी कवळ घेता नाम घ्या श्रीहरीचे' म्हणून आनंदाने खायला लागेल. याउलट जैन धार्मिक व्यक्ती 'यात कांदा आहे का', 'लसूण आहे का' याची चिकित्सा करत बसेल आणि शंका-संशय घेऊन पापभावनेने ते अन्न खाऊ लागेल. शिवाय झाडे-प्राणी यांच्यापासून दूर गेल्यामुळे निरीक्षण थांबले. जागृकता उरलीच नाही. प्रवृत्ति आणि निवृत्तीतला तोल मात्र ढळला.

ड) गांधीजींचे जैनधर्म व जनतेस योगदान

'गांधीजींनी जैन तत्त्वांची उधार-उसनवारी केली की जैनधर्माला योगदान दिले', हे अभ्यासताना आपल्याला पं. सुखलालजी संघवी या अभ्यासकाचा परिचय करून घेतला पाहिजे. पं. सुखलालजी संघवी हे साधारणपणे गांधीजींना समकालीन, जैन धर्मात जन्मलेले, अहमदाबादनिवासी, पूर्णतः अंध व्यक्ती असूनही जैनधर्माचा तौलनिक अभ्यास करून ग्रंथनिर्मिती करणारे, गांधीवादी विचारांचा पगडा असलेले होते. आज जर जैनधर्माचे साक्षेपी आणि तौलनिक चिंतन करायचे असेल तर त्यांचे 'दर्शन और चिंतन' हे जणू बायबलच आहे. यात त्यांचा गांधीजी आणि जैनधर्म या दोहोंचे परस्परसाहचर्य सांगणारा लेख आहे. त्यांच्या लेखाचे शीर्षक आहे - 'गांधीजी की जैनधर्म को देन'.

अशी जैन मान्यता आहे की परदेशी जाण्यापूर्वी गांधीजींना त्यांच्या आईने जैन साधूंकडे नेले होते. त्यांनापाच अणुव्रतांची दीक्षा दिली होती. पण अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आणि अपरिग्रह ही सार्वकालीन धर्मनिरपेक्ष तत्त्वे आहेत, हे जैन सहजी मान्य करीत नाहीत.

पूर्ण गांधीवादी असलेल्या सुखलालजींनी आपल्या लेखात मांडले आहे की, गांधीजींना समकालीन जैनधर्माची काय स्थिती होती ? - स्त्री-उद्धार सांगत असताना स्त्रियांना धर्मक्षेत्रातसुद्धा 'अबला' मानून व्यवहार केला जात होता. यज्ञीय हिंसेपासून ते वाचले पण उच्चनीचता, स्पृश्यास्पृश्यता न मानणारा जैनधर्म जातिवादी ब्राह्मण परंपरेच्या प्रभावाखाली आला होता. जैन समाजातील संप्रदायफूट विशेषत्वाने उठून दिसत होती. जैनधर्म म्हणजे त्याग, निवृत्ती असा सतत मोक्षकेंद्री उपदेश साधुवर्ग करत होता. निवृत्तीच्या नावावर निष्क्रियता जैनांमध्ये वाढली होती. सत्य-अहिंसा आणि अपरिग्रहाचे शुद्ध पालन आणि परिवर्तन यासंबंधी, साधुवर्ग गृहस्थांकडे आणि गृहस्थ साधुवर्गांकडे बोट दाखवत राहिले. समकालीन जैनधर्मात निवृत्तीचे प्राबल्य मात्र अधिकच वाढलेले दिसत होते.

आता अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, स्त्री-समानता, स्त्री-शक्ती, शाकाहार, रात्रिभोजनत्याग, जातिव्यवस्था, स्पृश्यास्पृश्यतेला विरोध, उपवास, पौषध, अठार्ड-आयंबिल-अनशनाचे महत्त्व, दान ही जी जैन तत्त्वे होती, ती कौशल्याने गांधीजींनी सामाजिक क्षेत्रात वळविली.

अनेकान्तवादी असलेल्या जैनांमध्ये - 'ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तमै ।' असे म्हणून किंवा 'राम कहो रहिमान कहो', म्हणत गांधीजींनी जणू प्राण फुंकले. अध्यात्मक्षेत्रात जाऊन बसलेली तत्त्वे स्वातंत्र्याच्या उच्च ध्येयाशी जोडली. राष्ट्रीयत्वाच्या नावाखाली येऊन एकजूट प्रस्थापित केली. आपलीच तत्त्वे घेऊन हा महात्मा राष्ट्रीय समाजजीवनात प्रयोग करतो आहे, हे बघून जैनांमध्येच नव्याने चेतना जागृत झाली.

* सर्व आंदोलने अहिंसक मार्गाने केली. अहिंसा हीच शस्त्रासारखी वापरली. अहिंसेला एक शास्त्र बनविले.

* 'माझे सत्याचे प्रयोग' हा ग्रंथ लिहून व्यापक राष्ट्रहितासाठी 'सत्याग्रहा'चा उपयोग केला.

* 'अपरिग्रहा'ला गांधीजींनी, ट्रस्टीशिप (विश्वस्त) सारख्या सिद्धांतात रूपांतरित केले.

* जैन समाजातील विधवा, परित्यक्ता, लाचार कुमारी, स्त्रिया मंदिरात, स्थानकात जाऊन जपमाळ घेऊन बसत होत्या किंवा दीक्षा घेत होत्या. त्यांच्यासाठी एकमेव मुक्तिमार्ग 'साध्वी बनणे' हाच होता. पण गांधीजींच्या स्त्रियांच्या सबलत्वाच्या विचारांनी प्रभावित होऊन अनेक जैन स्त्रियांनी स्वातंत्र्यप्राप्तीच्या सक्रिय लढ्यात भाग घेतला. निराश झालेल्या अनेक जैन स्त्रियांमध्ये नवचैतन्य निर्माण झाले.

* जैनांच्या शाकाहार आणि रात्रिभोजनत्यागाचा एकंदरीतच संपूर्ण गुजरातवर प्रभाव पडला. गांधीजींनी शाकाहार आणि रात्रिभोजनत्यागाला एक नवे परिमाण प्राप्त करून दिले. याचा प्रभाव स्वातंत्र्यसेनानींवरही पडला.

* 'सर्वजीवसमानता' हा जैनांचा प्राण आहे. मात्र जिनसेन आचार्यांच्या आदिपुराणाने स्पृश्यास्पृश्यता जैनधर्मात नकळत शिरली होती. गांधीजींनी अस्पृश्यतेविरुद्ध प्रत्यक्ष आंदोलन उभे केले. स्पृश्य-अस्पृश्य भेद समाजातून मिटविला.

* उपवास-अनशन-आयंबिल ही तपे धार्मिक-आध्यात्मिक आत्मोन्नतीसाठी आतापर्यंत जैन समाजात केली जात होती. आता ती प्रत्यक्ष सत्याग्रह आंदोलनातील अनिवार्य भाग ठरली. 'आमरण उपोषण' हे शस्त्रासारखे वापरले.

जैन लोक उपवास करण्यात इतके तरबेज आहेत की १ दिवस उपवास, १५ दिवस उपवास, १ महिना उपवास ते सहजतेने गरम पाणी पिऊन करतात आणि या उपवासाने आत्म्याची उन्नती होते, कर्मनिर्जरा होते अशी त्यांची धारणा आहे. पण हेच उपवास राष्ट्रासाठी करता येतील, हा प्रयोग करून जणू गांधीजींनी उपवासातच प्राण फुंकले.

* जैनधर्मात दानाला नुसते सामाजिक परिमाण म्हणून स्थान नाही तर त्याला सैद्धांतिक आधार आहे. राष्ट्राप्रीत्यर्थ उद्योगपतींनी संपत्ती अर्पण केली. उद्योगपती आपल्या उद्योग-व्यवसायातून राष्ट्रासाठी नफ्याचा भाग अर्पण करू लागले.

* अनेकान्तवादी असलेल्या जैन धर्मांमध्ये श्वेतांबर-दिगंबर-मंदिरमार्गी-स्थानकवासी-तेरापंथी-सोलहपंथी-साडेतेरापंथी-गण-गच्छ विभागणी मोठ्या प्रमाणावर झाली होती. या सर्वांना स्वातंत्र्याच्या एका ध्येयाखाली आणून श्रावकच नव्हे तर साधुवर्गातही नवचैतन्य निर्माण केले. अनेक जैन बुजुर्ग खादीचे व्रत घेऊन देशसेवा करू लागले.

हे सर्व जैनांना का जवळचे वाटले ? जैन लगेचच का आकृष्ट झाले ? कारण ही सर्व आपलीच तत्त्वे आहेत, हे पाहून जैन समाज खडबडून जागा झाला. सैद्धांतिक आधार असलेल्या तत्त्वांची प्रयोगशीलता जैन समाज विसरला होता. इतर कोणत्याही समाजापेक्षा जैन समाज गांधीजींकडे लगेच आकृष्ट झाला होता. स्वातंत्र्यप्राप्तीच्या चळवळीत ते प्रत्यक्ष आणि सक्रिय ओढले गेले.

ही सर्व तत्त्वे जरी 'जैन' होती तरी ती 'मृत' झाली होती. पण त्यांना 'जिवंत' करण्याचे काम गांधीजींनी केले गांधीजींनी ही तत्त्वे सक्षमपणे वापरून त्याचा प्रसार केला.

उपसंहार करताना असेच म्हणावेसे वाटते की पाऊस पडतो तेव्हा क्षेत्रमर्यादा नसते. चंद्र-सूर्य प्रकाश टाकतात तेव्हाही ते क्षेत्रमर्यादा आणि व्यक्तिभेद करित नाहीत. या न्यायाने गांधीजींचे हे योगदान फक्त जैनांनाच नसून संपूर्ण भारतीय समाजालाच दिलेले आहे.

इ) २० ते २५ वयोगटातील जैन युवक-युवतींच्या भावना

२० ते २५ वयोगटातील जैन युवक-युवतींच्या मनात काय चालले आहे ? यासाठी डेक्कन जिमखान्यावरील जैन होस्टेलमध्ये ग्रुप डिस्कशन ठेवले होते. त्यात जैन युवावर्ग म्हणतो की -

* हे सोडा, ते सोडा अशी नकारात्मकता कमी करा.

* खाण्यापिण्याच्या चर्चेभोवती आपला जो धर्म फिरतो आहे त्याचे स्वरूप बदला. 'शाकाहारा'च्या अंतर्गत चिकित्सेत शिरू नका.

* अहिंसेमुळे आलेली नकारात्मकता घालवून जैनांनी सकारात्मकता वाढवावी.

* आम्हाला मोक्ष आवडत नाही. आध्यात्मिकता नको, तर नैतिक गुणांचा परिपोष हवा आहे ; उपयुक्त आहे.

* महामस्तकाभिषेक, थाटामाटाचे पर्युषण-उत्सव, मंदिर-स्थानकनिर्माण इत्यादींकडील प्रचंड पैसा वळवून तो शिक्षण संस्था, ग्रंथालय उभारणीत लावू या.

* जैनविद्येत लपलेले विज्ञान तज्ज्ञमित्रांच्या सहाय्याने जगासमोर आणू या.

* पर्यावरणसंबंधी असलेले जैन विचार प्रत्यक्षपणे अगोदर जैनांमध्येच रूजवू या. जसे ओल्या कचऱ्यापासून फुलबाग-फळबाग फुलवू, सौरऊर्जेचा नैसर्गिक वापर करू. पाणी अडवू या पाणी जिरवू या.

* पक्षीमित्र-प्राणिमित्र बनू या.

गांधीजींची सगळी तत्त्वे आत्ताच्या काळात चालणार नाहीत.

मैत्रीभावासंबंधीचा जैनधर्मातील श्लोक आपण सार्थ करू या. तो श्लोक असा -

“खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।

मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणई ॥”

अर्थात् -

सर्व जीवांना मी क्षमा करतो.

सर्व जीव मला क्षमा करोत.

माझी सर्व भूतमात्रांशी मैत्री असावी.

माझे कोणाशीही वैर नसावे.

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

जैनांचे पर्युषण महापर्व : एक सकारात्मक बाजू

सुमतिलाल भंडारी

(पर्युषण-पर्व संपले की जैन पत्र-पत्रिकांमधे चर्चेला उधाण येते. त्यातील खर्च, भव्य मंडप, देखावा, भाषणबाजी, राजकीय नेत्यांची उपस्थिती, ठराविक मंडळींचा उदोउदो, पार्किंगच्या समस्या, आलोक्येच्या दिवशी होणारा कंटाळवाणा उशीर, पर्युषण संपल्यावर ओस पडणारी धर्मस्थाने - एक ना अनेक नकारात्मक मुद्दे पुढे येऊ लागतात. प्रस्तुत लेखात पर्युषण-पर्वाची जमेची बाजू मांडण्याचा प्रयत्न सन्मति-तीर्थच्या सजग विद्यार्थ्यांनी केला. त्यातील प्रमुख मुद्दे येथे दिले आहेत.)

वर्षाकाळाचे चार महिने जैन साधु-साध्वी, इतरत्र विहार न करता, एका ठिकाणी वास्तव्य करतात. या काळाला 'चातुर्मास' असे म्हणतात. साधु-साध्वींच्या सान्निध्याने त्या परिसरातला जैन समाज एकत्र येतो. त्यांच्या प्रवचनाला, इतर धार्मिक कार्यक्रमांना आवर्जून उपस्थित राहतो. दान, शील, तप याला वाहून घेतो. हे जैनांचेआगळे वेगळे वैशिष्ट्य आहे. ही परंपरा नित्यनियमाने हजारो वर्षांपासून चालू आहे. गाजावाजा न करता अथवा आमंत्रणाने सोपस्कार न करताही अविरतपणे टिकून राहिली आहे.

चातुर्मासाच्या या काळातील विशिष्ट आठ दिवस हे 'पर्युषण महापर्व' म्हणून ओळखले जातात. या आठ दिवसात संपूर्ण जैन समाजाचा कल धार्मिक कार्यात व्यस्त राहण्याकडे असतो. सर्व समाज धर्मस्थानात एकत्र येतो. सकाळपासून ते रात्रीपर्यंत धार्मिक कार्यात तो सहभागी होतो. या काळात जास्तीत-जास्त तप, दानधर्म, प्रभावना होते. एखाद्या महोत्सवाचे स्वरूप या काळाला प्राप्त होते. या आठ दिवसांची सांगता शेवटच्या दिवशी होते. त्या शेवटच्या दिवसाला 'संवत्सरी' असे म्हणतात.

पर्युषण महापर्वाची वैशिष्ट्ये :

- १) उद्योगधंद्याच्या निमित्ताने सतत व्यस्त असलेला जैन समाज, साधु-साध्वींच्या सान्निध्यात, जातपात, गरीब-श्रीमंत, लहान-वृद्ध हे भेद विसरून एकत्र येतो. एकोप्याने राहतो. धार्मिक प्रवृत्तीकडे वळतो. याकरिता कोणालाही वेगळी सूचना द्यावी लागत नाही.
- २) धर्मस्थानात सर्वांची गाठभेट होते. एकापासून दुसऱ्याला प्रेरणा मिळते. लहान मंडळी मोठ्यांकडे पाहून त्यांचे अनुकरण करतात. त्यामुळे लहानांवर चांगले संस्कार होतात. यामुळे पवित्र वातावरण निर्मिती हे या काळाचे वैशिष्ट्य ठरते.
- ३) जैन धर्माला राजाश्रय नाही. बाह्य स्वरूपाचे अथवा औपचारिक शिक्षण नाही अथवा लोकसंख्येचा दबावही नाही. तरीही जैन धर्म हजारो वर्षांपासून टिकून राहिला आहे. एकसंघ राहिला आहे. कुटुंबाच्या व चातुर्मासाच्यामाध्यमातून धर्मभावना प्रबळ होत असल्याने, तो शिथिलाचरणापासून दूर राहिला आहे.
- ४) पर्युषणाच्या काळात पाऊस जास्त असल्याने या आठ दिवसात हिरवी पालेभाजी खाल्ली जात नाही. रात्रिभोजन केले जात नाही. (यालाही शास्त्रीय कारण आहे. पावसामुळे भाज्यांमध्ये सूक्ष्म जीवाणू निर्माण होतात. तसेच रात्रीच्या वेळी पतंगासारखे किडे ताटात पडतात. सूर्यप्रकाशात या किड्यांची निर्मिती होत नसल्याने, बरेच जैन लोक चार महिने फक्त दिवसा उजेडीच जेवतात.)
- ५) पर्युषणकाळात सकाळपासून रात्रीपर्यंत सर्वजण धर्मकार्यात मग्न असतात. सकाळी प्रार्थना, नंतर प्रवचन, भोजनोत्तर सूत्रवाचन व सायंकाळी प्रतिक्रमण. सतत व्यस्त राहिल्याने सर्वांकडून यथाशक्ती अणुव्रतांचे पालन आपोआप होते. जास्तीचे खाणे, बाहेरचे खाणे (हॉटेलिंग), खरेदी, मनोरंजन (सिनेमा इ.) या सर्वांवर मर्यादा येते.
- ६) या काळात तप (उपवास, आयंबिल इ.) करण्याकडे सहज प्रवृत्ती होते. ही तप करण्याची भावना धार्मिक

कार्यक्रमातून मिळते. यातून संयमभावना जागृत होते.

७) दान देणे हे जैनांचे वैशिष्ट्य आहे. या काळात तर ती भावना प्रबळ होते. या दानाच्या प्रक्रियेमुळे अहंकारकमी होतो. नम्रता येते. आजकाल तर बरेच जण गुप्तदानाला प्राधान्य देऊ लागले आहेत.

चातुर्मासाच्या चार महिन्यांच्या काळात बाहेरगावाहून येणाऱ्या लोकांकरिता सकाळ-संध्याकाळ अन्नदान चालू असते. समाजातील दानशूर व्यक्ती हा खर्च उचलतात. सर्वांना धर्मध्यानात पूर्ण वेळ देता यावा याकरिता पर्युषणकाळात तर सकाळ-संध्याकाळ सर्वांच्या भोजनाची व्यवस्था केलेली असते.

८) पर्युषण पर्वांमध्ये अंतगडसूत्र व कल्पसूत्र यांचे वाचन होते. अंतगडसूत्रात श्रीकृष्णाची तसेच अर्जुनमाळी, गजसुकुमाल व अतिमुक्तकुमार यांच्या कथा दिलेल्या आहेत. यातून एक वेगळाच संदेश मिळतो. तो असा की, 'घृणा पापाची करा. पाप करण्याची करू नका. कारण पाप करणारा माणूस, जाणीव झाल्यानंतर, अंतर्बाह्य बदलू शकतो. आचरण सुधारून व कर्मनिर्जरा करून मोक्षाप्रत जाऊ शकतो. त्यामुळे त्यांची घृणा करू नका.' अंतगडसूत्राचे आणखी एक वैशिष्ट्य म्हणजे यात स्त्री-दीक्षा मोठ्या प्रमाणात दाखविल्या आहेत. या दीक्षा घेणाऱ्या स्त्रियांमध्ये, राण्यांपासून ते गरीब गृहिणीपर्यंत, सर्व थरातील स्त्रिया आहेत.

कल्पसूत्रात महावीरांचे संपूर्ण चरित्र दिले आहे. तसेच ऋषभदेव, अरिष्टनेमी, पार्श्वनाथ आदि तीर्थकरांची माहितीही दिली आहे. कल्पसूत्र हा आगम ग्रंथ आचार व तप यांना प्राधान्य देणारा आहे. तसेच कल्पवृक्षाप्रमाणे ऋद्धिसिद्धी, बुद्धी व सुखशांती प्रदान करणारा आहे. देवदेवतांच्या सहाय्याशिवाय, पुरुषार्थ करून, मोक्षाप्राप्ती व कर्ममुक्ती प्राप्त करता येते हे कल्पसूत्र शिकविते.

९) श्वेतांबर जैनांचे आगमग्रंथ हे श्रीकृष्णाच्या जीवनाला, त्याच्या परिवाराला प्राधान्य देणारे आहेत असे दिसते. अंतगडसूत्रात श्रीकृष्णाचे वर्णन आढळते. (जैनांचे २२ वे तीर्थकर अरिष्टनेमी हे श्रीकृष्णाचे चुलत बंधू होत.)

अंतगडसूत्रात श्रीकृष्णाने सामाजिक एकतेचा व समरसतेचा संदेश एका विटेच्या प्रसंगावरून दिला आहे. एकदा श्रीकृष्ण आपल्या परिवारासह व सैन्यासह तीर्थकरांच्या दर्शनाला चालला असताना, वाटेत एक वृद्ध आपल्या घराकरिता, एक एक वीट वाहताना दिसला. दया येऊन श्रीकृष्णाने विटांच्या ढिगाऱ्यातून एक वीट उचलून त्याच्या घरी नेऊन ठेवली. सर्व सैन्याने त्याचे अनुकरण केले व वृद्धाचा वीट वाहण्याचा त्रास वाचविला.

१०) पर्युषण काळात काही श्रावक-श्राविकाही स्वाध्यायी बनून आपले योगदान देतात. जेथे साधु-साध्वी नसतात, त्या गावात हे स्वाध्यायी जातात. आठ दिवस धर्मस्थानात राहून गावातील लोकांबरोबर प्रार्थना, सूत्रवाचन, प्रतिक्रमण हे उत्साहात करतात. गावाला साधु-साध्वींची अनुपस्थिती जाणवू देत नाहीत. अशा स्वाध्यायींकडे, लोक आपल्या धार्मिक शंकांचेही निरसन करून घेतात. जैन धर्म टिकून राहण्याचे हे एक प्रमुख कारण आहे.

११) स्वाध्यायींमुळे म्हणा अथवा गावात चालणाऱ्या पाठशाळेमुळे म्हणा, लहान वयात भक्तामरासारखी काही स्तोत्रे कंठस्थ केली जातात. त्याचा फायदा वृद्धापकाळात होतो. इंद्रिये जेव्हा क्षीण होतात, वाचन शक्य होत नाही तेव्हा कंठस्थ स्तोत्रे हा धर्मस्मरणाचा मुख्य आधार ठरतात.

१२) पर्युषण-काळातल्या आठ दिवसातील शेवटचा दिवस 'संवत्सरी' म्हणून ओळखला जातो. कळत-नकळत आपण रोजच्या जीवनात चुका करीत असतो. दुसऱ्यांना हानी पोहोचवीत असतो. त्यांना दुखवीत असतो. या दिवशी वर्षभरात सर्व जीवांप्रती अशाप्रकारे केलेल्या चुकांबद्दल, मनापासून क्षमायाचना केली जाते. यालाच 'आलोयणा' असे म्हणतात. आलोयणा वाचताना आपण कोणकोणत्या प्रकारे चुका करीत होतो याची जाणीव होते व भविष्यकाळात त्या कमी करण्यास मदत होते.

या दिवसाचे दुसरे वैशिष्ट्य म्हणजे गत वर्षात काया, वाचा, मनाने कोणाचे मन दुखावले असेल तर त्याची लहानथोर सर्वजण एकमेकांकडे क्षमायाचना करतात. अहंभाव, शत्रुत्व विसरून क्षमायाचना करतात. हा सर्वश्रेष्ठ संस्कार फक्त जैन धर्मियांमध्येच दिसतो.

थोडक्यात चातुर्मास, त्यातही पर्युषण महापर्व, हे इतर समाजाकरिताही, जैन धर्माचे हृदय जाणून घेण्याचा काळ आहे. जैनांकरिता त्यांच्या तपोमय, त्यागमय, संयमी वृत्तीमुळे हा महोत्सव आगळा वेगळा ठरतो. त्यांच्या दृष्टीने धर्मभावनेची बॅटरी पुन्हा चार्ज होते. सामूहिक भावना पुन्हा वाढीला लागते. हेवेदावे विसरण्याचा प्रयत्न होतो व सर्व समाज शांतपणे पुन्हा उर्वरित आठ महिने आपल्या व्यापात मग्न होण्याकरिता तयार होतो.

जाता जाता एकच सुचवावेसे वाटते की जेव्हा या निमित्ताने सर्व समाज इतक्या मोठ्या संख्येने गोळा होतो, तेव्हा पूर्ण समाजाच्या दृष्टीने विचारमंथन व्हावयास हवे. जैन समाजास एक निश्चित दिशा मिळावयास हवी व संघटनात्मक कौशल्याचा देशकार्यासाठी कसा उपयोग होऊ शकेल हेही पहावयास हवे. तसे झाले तर चातुर्मासचा उद्देश पूर्णतः साध्य झाल्याचे समाधान मिळेल.

देशासाठी मी काय करू शकते/शकतो ?

(पुणे विद्यापीठातील जैन अध्यासन आणि सन्मति-तीर्थ, जैनविद्या संस्था यांच्या संयुक्त विद्यमाने फिरोदिया सभागृहात एका चर्चासत्राचे आयोजन करण्यात आले होते. २६ जानेवारी २०१३, शनिवार - या दिवशी राष्ट्रभक्तिपर गीते आणि राष्ट्रगीताच्या सामूहिक गायनानंतर सर्व उपस्थित श्रोतृवर्गाला देशप्रेमविषयक छोटे-छोटे उपायसुचविण्याचे आवाहन करण्यात आले. सर्व स्त्री-पुरुषांनी आपापले विचार अगदी संक्षेपात प्रस्तुत केले. २६ जानेवारी आणि १५ ऑगस्ट या दोनच दिवसांपुरते राष्ट्रप्रेमाचे भरते येण्यापेक्षा दैनंदिन जीवनात, आपण काय करू शकतो ? ते प्रत्येकाने वेगवेगळ्या प्रकारे व्यवस्थित मांडले. त्यांचा गोषवारा १५ ऑगस्टच्या निमित्ताने देण्याचा हा अल्पसा प्रयत्न !)

* टॅक्स भरताना, त्या पैशाचा उपयोग किती प्रमाणात होतो किंवा नाही याचा विचार न करता, प्रामाणिकपणे मी जास्तीत जास्त टॅक्स भरेन.

* माझ्या संपर्कात येणाऱ्यांना जास्तीत जास्त शिक्षणाचे महत्त्व समजावून देऊन, त्यांना शिकण्यासाठी प्रेरित करेन. त्यासाठी यथायोग्य सहाय्य तसेच मार्गदर्शनही करेन.

* मी ज्या ज्या भूमिकेतून व ज्या ज्या अवस्थेतून जाते, तेव्हा तेव्हा माझ्या कर्तव्यांचे मी दक्षतेने पालन करेन. कर्तव्यपराङ्मुख होणार नाही.

* मी देशसेवेची सुरवात, नागरिकशास्त्रापासून करेन. घर तर आपण स्वच्छ ठेवतोच पण आपल्या आजूबाजूचा परिसरही स्वच्छ ठेवण्याचा प्रयत्न करेन. ज्या कारणाने पर्यावरण बिघडेल, अशी एकही वस्तू बाहेर टाकणार नाही.

* बँकिंग, इन्शुरन्स इ. सेवाक्षेत्रातच मी काम करत असल्यामुळे, देशसेवा करण्यासाठी इतरत्र न जाता, मी लोकांना जी सेवा देतो, तीच न कटाळता व आनंदाने देईन.

* गरजवंतांना अल्पशी का होईना आर्थिक मदत करेन.

* भ्रष्टाचार न होण्यासाठी आपापल्या परीने प्रयत्न केले पाहिजेत. पहिली गोष्ट भ्रष्टाचारातून येणारा पैसा आपल्या घरात येऊ देणार नाही. दुसरी गोष्ट छोट्या छोट्या गोष्टीत, जसे ड्रायव्हिंग टेस्ट न देता ल्हासन्स मिळविणे, रांगेत उभे न राहता तिकिटे मिळविणे इ.इ. गोष्टी स्वतःच करण्याचा जास्तीत जास्त प्रयत्न करेन.

* गाडीवरून जाताना सिग्नल यंत्रणेच्या व्यवस्थेचे पालन करेन. वाहतुकीच्या नियमांचे पालन करेन.

* अंधोळीच्या निमित्ताने पाण्याचा होणारा अतिवापर व अपव्यय टाळण्याचा मी प्रयत्न करेन. गळणारे नळ ताबडतोब दुरुस्त करेन.

* सोलर एनर्जीचा वापर करून, विजेची बचत तसेच मर्यादित वापर करेन.

* दूषित व भ्रष्ट राजकारण व नेते यांच्या विरोधात नुसती चर्चा करणे आणि मतदानाला न जाणे असे दुहेरी वर्तन करणार नाही. प्रामाणिकपणे मतदान करेन. पुण्यासारख्या सुशिक्षित शहरातसुद्धा फक्त ५० % आसपास मतदान होणे ही आपणा सर्वांसाठीच लाजिरवाणी गोष्ट आहे.

* आठवड्यातून एक दिवस तरी वाहन न वापरण्याचा प्रयत्न करेन.

* जवळच्या अंतरासाठी पायी चालत जाण्याचा प्रयत्न करेन.

* आपल्या बोलण्याचा व वागण्याचा त्रास दुसऱ्याला होणार नाही याची दक्षता घेईन.

* आपल्या भावी युवा पिढीला औपचारिक शिक्षणाबरोबर, नैतिकमूल्यांचा परिचय करून देईन. नीतिमूल्यांचे विचारधन त्यांना देऊन त्यांच्यामध्ये जागृती आणण्याचा प्रयत्न करेन.

* राष्ट्रीय संपत्तीचे जतन करेन. अन्नधान्याचा वापर काळजीपूर्वक करेन. स्वयंपाक करून शिजवलेले अन्न वाया जाणार नाही याची काळजी घेईन. अन्नधान्याचा साठा खराब न होण्याची खबरदारी घेईन.

* जातीयवादाला खतपाणी घालणार नाही व कोणत्याही प्रकारच्या जातिविषयक चर्चांमध्ये भाग घेणार नाही. मौन बाळगेन. जैनधर्माने सांगितलेल्या वचनगुप्तीचा अंगीकार करेन.

* एखाद्या व्यक्तीला अथवा प्राण्याला अपघात झाल्यावर बघ्याची भूमिका न घेता, यथाशक्य मदत करण्याचा प्रयत्न करेन.

* बागेत फिरायला जाताना रोज एक बाटली पाणी तेथील झाडांकरिता घेऊन जाईन.

* सद्यपरिस्थितीत वाहतुकीमध्ये खूपच वाढ झालेली आहे. तेव्हा एकट्यासाठी चारचाकी वाहनाचा वापर टाळण्याचा प्रयत्न करेन.

* प्रत्येकाने रक्तदान तर वेळोवेळी करावेच, पण त्याचबरोबर देहदानाचा, नेत्रदानाचा संकल्पही करावा. अशा प्रकारचे दान स्वतः करण्याचा व इतरांना त्यासाठी उद्युक्त करण्याचा प्रयत्न करेन.

* लोकसेवेसाठी ज्या ज्या आरोग्यसंस्था, सामाजिक संस्था काम करतात त्यांना यथाशक्य मदत करण्याचा प्रयत्न करेन.

* शाळा-कॉलेजसारख्या शिक्षणसंस्थांमधून वर्षातून संस्कारवर्ग घेण्याचा प्रयत्न करेन.

* गोरक्षणासाठी पुढाकार घेईन.

* वाहनांचे हॉर्न व इतर प्रकारच्या आवाजाच्या माध्यमातून होणारे ध्वनिप्रदूषण कमीत कमी करण्याचा प्रयत्न करेन.

* उत्सव, समारंभ यांमध्ये होणारे खोटे किंवा गरज नसलेले दिव्याळपणाचे प्रदर्शन करणार नाही व त्यामुळे होणारा पैशांचा अपव्यय टाळण्याचा प्रयत्न करेन.

* वृक्षारोपणासारख्या हितकारी उपक्रमांना प्रोत्साहन देण्याचा प्रयत्न करेन.

* प्लॅस्टिकचा वापर करून बनविलेल्या वस्तूंचा वापर कमीत कमी करण्याचा प्रयत्न करेन.

* केवळ दुसऱ्यांना चांगल्या विचारांचे उपदेश देऊन सुधारण्याआधी त्या विचारांचे पालन स्वतः करण्याचा प्रयत्न करेन.

* धार्मिक संस्थांना देवाधर्माच्या नावाने पैसे देण्यापेक्षा त्या पैशाचा उपयोग समाजातील खऱ्या अर्थाने गरजवंत जे असतील त्यांच्यासाठी करेन.

* स्वतःच्या कुटुंबातील तरुण मुलामुलींना चांगले सुसंस्कारित व सुशिक्षित करण्याचा प्रयत्न करेन.

* जे सैनिक रात्रंदिवस पहारा देऊन आपल्या देशाच्या सीमांचे परकीय शक्तींपासून संरक्षण करतात त्यांच्याविषयी आदर व कृतज्ञता भाव मनात ठेवून त्यांचे नित्य स्मरण करेन.

सन्मति-तीर्थ के परीक्षा परिणाम

हार्दिक अभिनंदन !!!

(अ) जैनालॉजी परीक्षा परिणाम (२०१२-२०१३)

क्रमांक	नाम	केंद्र
जैनालॉजी प्रथम वर्ष (सर्टिफिकेट)		
प्रथम	डुंगरवाल नीलिमा मेघ	बिबवेवाडी, पुणे
द्वितीय	जैन सुनिधी स्वप्नील	औरंगाबाद
द्वितीय	मुनोत पूजा पियूष	औरंगाबाद
तृतीय	ललवाणी मेहवी विक्रम	बिबवेवाडी, पुणे
जैनालॉजी द्वितीय वर्ष (कोविद)		
प्रथम	राठोड श्वेता विशाल	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
द्वितीय	गांधी सुवर्णा आनंद	लोणी
तृतीय	गुगळे अपर्णा संतोष	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
जैनालॉजी तृतीय वर्ष (विशारद I)		
प्रथम	चोरडिया प्रीति हर्षद	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
द्वितीय	कुवाड सुनीता नितीन	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
तृतीय	बाफना नीता सुरेश	श्रीरामपुर
जैनालॉजी चतुर्थ वर्ष (विशारद II)		
प्रथम	मुनोत मीना दिनेश	औरंगाबाद
द्वितीय	बोरा अलका प्रकाश	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
तृतीय	झांजरी पिंगी कैलाश	औरंगाबाद
तृतीय	कुंकुलोळ सोनल हेमंत	श्रीरामपुर
जैनालॉजी पंचम वर्ष (विशारद III)		
प्रथम	भंडारी सुमतिलाल चंदनमल	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
द्वितीय	बागमार स्मिता राजेंद्र	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
तृतीय	मुथा रसिक घेवरचंद	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
जैनविद्या प्रगत पाठ्यक्रम : जैनतत्त्वप्रकाश I		
A+ श्रेणि	शहा जयबाला पंकज	अरिहंत सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	गांधी प्रीति तुषार	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	हिरण अरुणा नंदकिशोर	लोणी

क्रमांक	नाम	केंद्र
जैनविद्या प्रगत पाठ्यक्रम : जैनतत्त्वप्रकाश II		
A+ श्रेणि	भंडारी मंगला नेमीचंद	श्रीरामपुर

जैनविद्या प्रगत पाठ्यक्रम : तत्त्वार्थसूत्र I		
A+ श्रेणि	कांकरिया एकता अमित	औरंगाबाद

जैनविद्या प्रगत पाठ्यक्रम : तत्त्वार्थसूत्र II		
A+ श्रेणि	गांधी रूपाली संदेश	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	बाफना विमला प्रकाश	औरंगाबाद
A+ श्रेणि	जैन मित्तल नीलेश	औरंगाबाद
A+ श्रेणि	संकलेचा निर्मला महावीर	औरंगाबाद
A+ श्रेणि	झांबड सीमा सुभाष	औरंगाबाद
A+ श्रेणि	संघवी पूनम रूपेश	श्रीरामपुर

आगम सीरिज : आचारांग I		
A+ श्रेणि	देसर्डा मोनिका अभिजित	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	सरनोत जयश्री संजय	लोणी

आगम सीरिज : सूत्रकृतांग I		
A+ श्रेणि	ओस्तवाल नेहा प्रदीप	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	शहा कल्पना अश्विन	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	शिंंगवी रत्नमाला रसिक	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	बोरुंदिया सुरेखा राजेंद्र	येरवडा
A+ श्रेणि	देसडला संगीता प्रवीण	येरवडा
A+ श्रेणि	गांधी हेमलता नवनीत	श्रीरामपुर
A+ श्रेणि	गांधी ज्योति नवनीत	लोणी

आगम सीरिज : सूत्रकृतांग II		
O श्रेणि	भंडारी कुमुदिनी रमेश	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
O श्रेणि	गोठी मंगला दिलीप	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
O श्रेणि	मुथा ज्योत्स्ना नरेंद्र	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
O श्रेणि	समदडिया चंदा विजय	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
O श्रेणि	संचेती लीना उमेश	फिरोदिया होस्टेल, पुणे

O = Oustanding

आगम सीरिज : स्थानांग		
A+ श्रेणि	मुथा विजया विजय	श्रीरामपुर

क्रमांक **नाम** **केंद्र**

आगम सीरिज : समवायांग

A+ श्रेणि भंडारी जया मोहनलाल दौंड
A+ श्रेणि कोठारी शीला दिलीप दौंड

आगम सीरिज : भगवतीसूत्र I

A+ श्रेणि बंब सरिता धरमचंद औरंगाबाद
A+ श्रेणि मुथा अर्चना औरंगाबाद

जैनविद्या प्रगत पाठ्यक्रम : गीता II

A+ श्रेणि बोरा सोनल किशोर ऋतुराज सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि छेडा कल्पना खुशाल ऋतुराज सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि ओस्तवाल नेहा प्रदीप ऋतुराज सोसायटी, पुणे

जैनाॅलॉजी प्रवेश प्रथमा : (मौखिक)

A+ श्रेणि फुलफगर सारा शीतल शान टेरेस, पुणे
A+ श्रेणि फुलफगर सेजल शीतल शान टेरेस, पुणे
A+ श्रेणि मुथा अभिजित अजित शान टेरेस, पुणे
A+ श्रेणि सुराणा ममता संतोष शान टेरेस, पुणे
A+ श्रेणि छाजेड वेदांत आनंद बिबवेवाडी, पुणे
A+ श्रेणि चोरडिया जिया विशाल बिबवेवाडी, पुणे
A+ श्रेणि जैन हर्षिता दीपेश बिबवेवाडी, पुणे
A+ श्रेणि शहा ईशा मनोज बिबवेवाडी, पुणे
A+ श्रेणि जैन पुनीत राकेश मुंबई
A+ श्रेणि शिंगवी पूरब प्रशांत आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि पीचा केतन रितेश आदर्श सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि मेहता देवांश महेश आदर्श सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि पटवा विनया सुशील अहमदनगर

जैनाॅलॉजी प्रवेश द्वितीया : (मौखिक)

A+ श्रेणि भटेवरा नीति अमित ऋतुराज सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि पगारिया जिनय नीलेश ऋतुराज सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि कुवाड सारा गौरव आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि जैन अंश महावीर शिवाजीनगर, पुणे
A+ श्रेणि पुंगलिया सानिया मनीष शिवाजीनगर, पुणे
A+ श्रेणि चोरडिया जिया विशाल बिबवेवाडी, पुणे
A+ श्रेणि कोठारी खुशी महेश बिबवेवाडी, पुणे
A+ श्रेणि राका ईशा राहुल बिबवेवाडी, पुणे

क्रमांक	नाम	केंद्र
A+ श्रेणि	बोकरिया प्रजय विवेक	अरिहंत सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	बोथरा साक्षी अजय	अहमदनगर
A+ श्रेणि	फिरोदिया तेजल प्रकाश	अहमदनगर

जैनाॅलॉजी प्रवेश तृतीया : (मौखिक)

A+ श्रेणि	बोरा पूर्वा नितीन	बिबवेवाडी, पुणे
A+ श्रेणि	कासवा निधि पारस	अहमदनगर

जैनाॅलॉजी प्रवेश चतुर्थी : (मौखिक)

A+ श्रेणि	चोरडिया युक्ता हर्षद	शिवाजीनगर, पुणे
A+ श्रेणि	वालुंज अंकिता अनंत	शान टेरेस, पुणे
A+ श्रेणि	बोरा साक्षी राजेश	बिबवेवाडी, पुणे
A+ श्रेणि	बोरा महावीर विलास	अहमदनगर
A+ श्रेणि	बोरा यश विलास	अहमदनगर
A+ श्रेणि	कासवा भक्ति अमोल	अहमदनगर

जैनाॅलॉजी प्रवेश पंचमी : (मौखिक)

A+ श्रेणि	सिरोया मनन गिरीश	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	सुराणा खुशी संतोष	शान टेरेस, पुणे
A+ श्रेणि	सूरपुरिया दिशा संजय	आदर्श सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	बाफना जिनल अजित	आदर्श सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	भळगट अमेय महेश	अहमदनगर
A+ श्रेणि	भळगट प्रज्ञा राहुल	अहमदनगर
A+ श्रेणि	भुरट ईशान मनोज	ऋतुराज सोसायटी, पुणे

जैनाॅलॉजी प्रवेश प्रथमा : (लेखी)

A+ श्रेणि	बांठिया सोनाली प्रीतम	आदर्श सोसायटी, पुणे
-----------	-----------------------	---------------------

जैनाॅलॉजी प्रवेश द्वितीया : (लेखी)

A+ श्रेणि	जैन सतीश बाबूलालजी	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	नहार मनीषा हेमंत	ऋतुराज सोसायटी, पुणे

जैनाॅलॉजी प्रवेश तृतीया : (लेखी)

A+ श्रेणि	बोथरा ज्योति धर्मेद्र	सुखसागरनगर, पुणे
A+ श्रेणि	लोढा रूपाली राजकुमार	सुखसागरनगर, पुणे
A+ श्रेणि	लोढा विद्या राजकुमार	सुखसागरनगर, पुणे
A+ श्रेणि	टाटिया सुवर्णा राजकुमार	सुखसागरनगर, पुणे

क्रमांक	नाम	केंद्र
जैनाॅलॉजी परिचय (१)		
A+ श्रेणि	शहा पलक मनोज	शिवाजीनगर, पुणे
A+ श्रेणि	बलाई ऐश्वर्या सुनील	बिबवेवाडी, पुणे
A+ श्रेणि	संचेती मोनिका प्रीतेश	महावीर प्रतिष्ठान, पुणे
A+ श्रेणि	भळगट स्मिता अनिल	अरिहंत सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	सुराणा सविता प्रदीप	अरिहंत सोसायटी, पुणे

जैनाॅलॉजी परिचय (२)		
A+ श्रेणि	बलदोटा रिटा अमित	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	बोरा नूतन राजेंद्र	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	गटागट प्रीति अभिजित	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	नहार सुप्रिया अमित	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	जैन अनुपमा समीर	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	मुनोत सोनाली वसंतलाल	अरिहंत सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	भंडारी शीतल उमेश	चिंचवड
A+ श्रेणि	कात्रेला शुभांगी मनोज	चिंचवड
A+ श्रेणि	लुणावत मनीषा संतोष	चिंचवड

जैनाॅलॉजी परिचय (३)		
A+ श्रेणि	बोरा सोनाली पारस	मुंबई

जैनाॅलॉजी परिचय (४)		
A+ श्रेणि	सरनोत सलोनी सुनील	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
A+ श्रेणि	कोठारी नयना दिनेश	कल्याण सोसायटी, पुणे

(ब) प्राकृत परीक्षा परिणाम (२०१२-२०१३)

क्रमांक	नाम	केंद्र
प्राकृत प्रथम वर्ष (सर्टिफिकेट)		
प्रथम	शहा स्मिता अतिवीर	भवानी पेठ, पुणे
द्वितीय	बंब प्रीति जीवन	ऋतुराज सोसायटी, पुणे

प्राकृत द्वितीय वर्ष (ज्युनियर डिप्लोमा)		
प्रथम	राठोड श्वेता विशाल	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
द्वितीय	गांधी लीना भारत	ऋतुराज सोसायटी, पुणे

क्रमांक

नाम

केंद्र

प्राकृत तृतीय वर्ष (सीनियर डिप्लोमा I)

प्रथम

कुवाड सुनीता नितीन

ऋतुराज सोसायटी, पुणे

द्वितीय

शहा पल्लवी हितेंद्र

आदिनाथ सोसायटी, पुणे

तृतीय

मुथा किरण पारस

औरंगाबाद

प्राकृत चतुर्थ वर्ष (सीनियर डिप्लोमा II)

प्रथम

नहार सुवर्णा राजेंद्र

ऋतुराज सोसायटी, पुणे

द्वितीय

समदडिया नयना विनोद

ऋतुराज सोसायटी, पुणे

सन्मति-तीर्थ के शिक्षक
एवं अध्यापन केन्द्र

(अ) जैनालॉजी एवं प्राकृत के शिक्षक (ज्येष्ठतानुसार)

क्रमांक	नाम	केंद्र
१)	डॉ. नलिनी जोशी	फिरोदिया होस्टेल, पुणे
२)	सौ. सज्जनबाई बोथरा	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
३)	सौ. जया भंडारी	दौंड
४)	सौ. आशा कांकरिया	येरवडा, पुणे
५)	सौ. शोभा काठेड	औरंगाबाद
६)	सौ. कांताबाई दुगड	श्रीरामपुर, लोणी, राहुरी
७)	डॉ. अनीता बोथरा	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
८)	सौ. शोभा लुंकड	श्रीरामपुर
९)	सौ. विजया मुथा	श्रीरामपुर
१०)	सौ. विमल बाफना	औरंगाबाद
११)	सौ. सीमा झांबड	औरंगाबाद
१२)	डॉ. अर्चना मेहता	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
१३)	सौ. प्रतिभा ललवाणी	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
१४)	सौ. कमल लुंकड	अरिहंत सोसायटी, पुणे
१५)	सौ. हंसा नहार	शिवाजीनगर, पुणे
१६)	सौ. चंदा समदडिया	बिबवेवाडी, पुणे
१७)	सौ. चंचल कोठारी	सुखसागरनगर, पुणे
१८)	सौ. मेघा कोठारी	चिंचवड, पुणे
१९)	सौ. ज्योति गांधी	लोणी
२०)	सौ. प्रतिभा कटारिया	अहमदनगर
२१)	सौ. जयश्री सरनोत	लोणी
२२)	सौ. अनीता बांठिया	श्रीरामपुर

(ब) बच्चों को पढानेवाले शिक्षक (अंग्रेजी अकारानुक्रम से)

क्रमांक	नाम	केंद्र
१)	श्रीमती बागमार चंद्रकला	मेवाड भवन, पुणे
२)	सौ. भंडारी जया	दौंड
३)	डॉ. बोथरा अनीता	ऋतुराज सोसायटी, पुणे
४)	सौ. बोथरा संगीता	बिबवेवाडी, पुणे
५)	सौ. चंगेडिया पल्लवी	दौंड
६)	सौ. चोरडिया हेमा	शान टेरेस, पुणे
७)	सौ. गांधी कांता	महावीर प्रतिष्ठान, पुणे

क्रमांक	नाम	केंद्र
८)	सौ. कटारिया प्रतिभा	अहमदनगर
९)	सौ. कर्नावट सविता	गंगाधाम सोसायटी, पुणे
१०)	कु. ललवाणी ज्योति	कोठारी ब्लॉक्स, पुणे
११)	सौ. ललवाणी प्रतिभा	आदिनाथ सोसायटी, पुणे
१२)	सौ. लुंकड कमल	अरिहंत सोसायटी, पुणे
१३)	श्रीमती मुथा ज्योत्स्ना	कल्याण सोसायटी, पुणे
१४)	सौ. नहार हंसा	शिवाजीनगर, पुणे
१५)	सौ. शिंगवी पुष्पा	आदर्श सोसायटी, पुणे
